सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

एवं आध्यात्म का

श्रीरामनवमी जन्मोत्सव विशेषांक

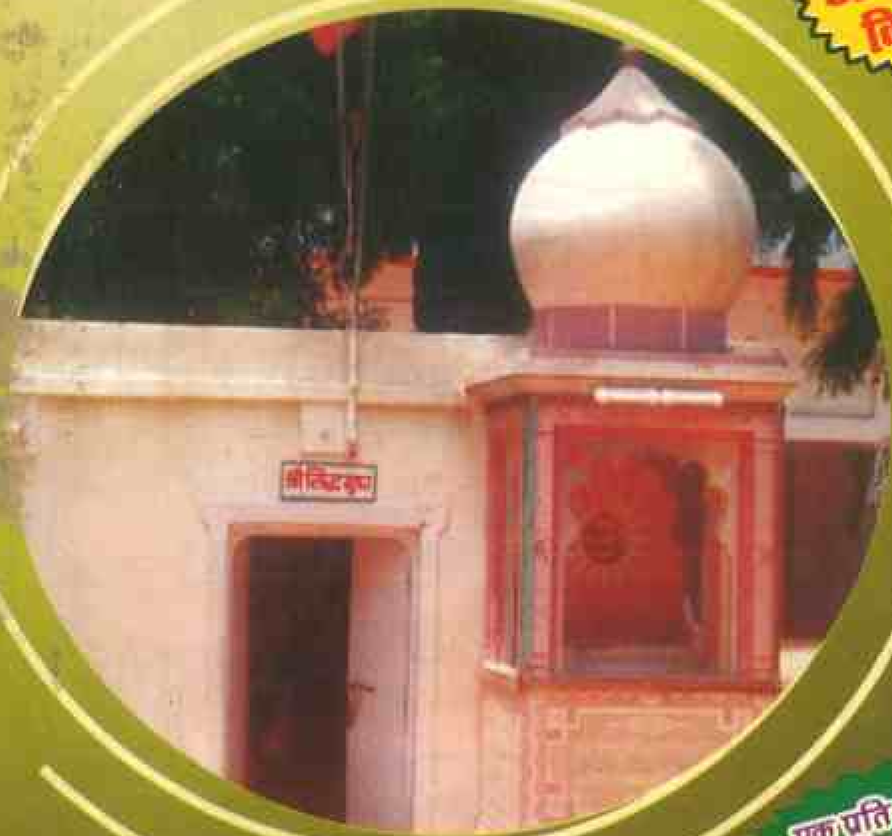

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 320

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सयॉई-283202 (आगरा) उ.प्र

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 49 अंक : 1

सहस्त्रं त इन्द्रोतयो न
सहस्त्रमिषोंहरिवो गूर्ततमाः।
सहस्त्रं रायो मादयध्यै
सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजाः।।

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

अप्रैल 2016

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	सद्गुरु सत्ता एवं श्री महाप्रभुजी–श्री आर.के.गोस्वामी न्यायाधीश	13
4.	योग–निद्रा – योगी आदित्यनाथ	16
5.	योगी का दरबार – श्री जगदीश राए बंसल	18
6.	भजन (मलकर अभियान काया जानी है)– कुमारी हेमलता	19
7.	जाने सो कहि सके नहि, कहै सो जानै नाहि – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	20
8.	एक अद्भुत बालक का प्राकट्य – केशव देव उपाध्याय	22
9.	हम योग भ्रष्ट, अधम पापी – श्री राजीव कुमार	26
10.	गोरखवाणी	28
11.	परधर्म' धर्म ' के आठ अंग – श्री दिनेश चन्द शर्मा	30
12.	वेद मानव की प्रार्थना	34
13.	अमृत – कण	35
14.	योगध्यान की महिमा	36
15.	हे सिद्ध पीठ तुमको प्रणाम – श्री त्रिलोक सिंह विष्ट	37
16.	स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर – जय नारायण राय	38
17.	भक्ति – स्वामी विवेकानन्द	40
18.	गुरु–शिष्य – भगिनी निवेदिता	47
19.	परम पूज्य अनन्त श्री गुरुदेव के चरणों में – त्रिजुगी नारायन मिश्र	51
20.	योग – आसन	52

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

मेरे श्री गुरुदेव

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तकवह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :-

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के

अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दो के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया।

केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्‌गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही "कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्" की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था; 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्‌भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशषता यह है कि यह

लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए। इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 : सर्वोत्तान – केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।

2 : स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।

3 : पादचालन – आठ मिनट।

4 : नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।

5 : जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।

6 : बालमचलन – केवल एक मिनट।

7 : बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।

8 : नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।

9 : उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) **अमर तत्व साधन** – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा** – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्‌गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके

अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा; ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्‌भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई।

दादा गुरूदेव योगेश्वर
प्रभु रामलाल जी महाराज

श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े-बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे-से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश-गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नही आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्दृष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या-क्या कार्य किया, वह शनैः-शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

परम गुरूदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

योगाचार्य डॉ. दासलाल

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतञ्जलिदेव जी महाराज ने **'सः पूर्वेषामपि गुरूः कालेनान वच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं– जैसा कि भगवान् ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भाँति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है उनके चरित्र व इतिहास को जानना असंभव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर अमर रह कर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बना कर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।'' अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर तत्त्व भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

महाप्रभु रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्रायः होता देखकर बीसवीं शताब्दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। वे योग के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके श्वास–श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। ''कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्'' की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्यः प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे–पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर इस भूमि को

पवित्र किया और उसे योग का हृदय बना कर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत-प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी श्रृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति अनेक सिद्ध है जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरि पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्र मोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैंकड़ों योग की शाखायें देश-विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी की अप्रतिम योग प्रभाव को स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदाशिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते हैं।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभु जी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे। एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वतः ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस समय में बहुत से तांत्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आप ने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियों तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते-घूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए सवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरशः सत्य होती थी। आप के दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आप के निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिये उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभु जी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रातः काल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग विद्या के प्रसार के लिए पुनः मैदानों में आ गये। अपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार का प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाया। आप ने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह

मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्र मोहन श्री महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुये जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती है। 'सिद्धयोग' की परम्परा में यद्यपि सिद्ध गुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद् गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान है सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में 13, 14 व 15 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

■ ■ ■

सच्चा बुद्धिमान् तो वह है, जो इस रहस्य को समझ लेता है और सारे जगत् की उत्पत्ति का कारण तथा जगत् की सारी प्रवृत्तियों का हेतु एकमात्र श्री भगवान् को मानकर, भावपूर्ण हृदय से भगवान् को भजता है।

सद्गुरु सत्ता एवं श्री महाप्रभुजी

श्री आर. के. गोस्वामी न्यायाधीश

क्रमश :1

मैंने पूर्व में सद्गुरु सत्ता एवं श्री महाप्रभु जी शीर्षक से लेख लिखा था। लेख में यह बताने का प्रयास किया गया था कि सद्गुरु सत्ता ही ईश्वर सत्ता है। अर्थात् ईश्वर का ही नाम सद्गुरु सत्ता है। वेदों में, उपनिषदों, श्रीमद्भागवत्, रामायण, आदि ग्रंथों में जो ईश्वर का वर्णन आया है। उसमें भी यही बताया गया है कि ईश्वर अनादि है, अनंत है, और उसकी शक्तियाँ असीमित हैं। ईश्वर ने ही सारे संसार का निर्माण किया है और ईश्वर अकाल है, अर्थात् काल की हद से परे है।

सद्गुरु देव भगवान बताया करते थे कि सद्गुरु सत्ता वह है, जो काल की हद पर है। अर्थात् वहा काल नहीं पहुँच सकता है। जिसे सूर्य या चन्द्र प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। जिसका प्रकाश अनेक सूर्यों से भी बड़ा है। ईश्वर का भी यही लक्षण बताया गया है। श्रीमद्भागवत गीता में श्री भगवान श्री कृष्ण ने अध्याय 15 के श्लोक 06 में बताया कि उस ''स्वयं प्रकाशमय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा प्रकाशित कर सकता है। और न ही अग्नि प्रकाशित कर सकती है। वही मेरा परम धाम है''

उपनिषद में भी यही बताया गया है। अर्थात् सद्गुरु सत्ता या ईश्वर सत्ता काल के हद से परे है। और स्वयं प्रकाशित है।

वह सत्ता इस धरा पर जिस रूप में आई उसकी संसार में पूजा हुई। जब वो सत्ता श्री वामन भगवान के रूप में आई तो उसकी पूजा हुई। जब वो सत्ता श्री राम या श्री कृष्ण के रूप में आई तो उसकी पूजा हुई। और सारे देवी देवता एवं भगवान शंकर उन्हें नमन करने आये। दूसरी ओर भगवान श्री राम और श्री कृष्ण शंकर भगवान की पूजा करते थे। तब सद्गुरु सत्ता भगवान शंकर में प्रकाशित रही। कलयुग में सद्गुरु सत्ता श्री प्रभु जी के रूप में आई। श्री प्रभु जी के चरित्र व लीलाओं से यह स्पष्ट हो गया है, कि प्रभु जी का अवतरण इस धरा पर सद्गुरु सत्ता के रूप में हुआ था। हमारे प्राणाधार श्री सद्गुरुदेव जी बताया करते थे कि महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज पूर्ण महासिद्धियों में हैं जिनमें हर युग और काल में सद्गुरुसत्ता पूर्ण प्रकाशित हुई।

काक भसुंडी की काक नाड़ी संहिता में हमारे महाप्रभु जी के विषय में भविष्य वाणी की गई है कि ''कलि काल में भारत के पंजाब राज्य में अमृतसर नगर में पं गंडाराम जी की धर्म पत्नी श्रीमती भागवन्ती के गर्भ में सतचित और आनन्दमयी शक्ति गुरुओं के गुरु प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के रूप में अवतीर्ण होगी। यह महापुरुष जगत की आधार महाशक्ति का अवतार है इस संसार में शरीर त्याग के पश्चात् भी यह ईश्वरीय शक्ति अन्य देह में

प्राणीमात्र के उद्धार के लिए कल्पान्त तक अनश्वर रहेगी।'' यह भविष्यवाणी हमारे प्राणाधार श्री महाप्रभु रामलाल जी पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है श्री महाप्रभु जी ने अवनि मंडल पर जो चरित्र किये उनसे स्पष्ट होता है कि सद्गुरु सत्ता या ईश्वरीय सत्ता इस अवनि मंडल पर श्री प्रभु जी के रूप में अवतरित हुई।

क्रमश: अब हम लोग भी श्री गुरुदेव भगवान द्वारा बताये गये महाप्रभु जी के चरित्रों का स्मरण करेंगे।

श्री गुरुदेव भगवान बताया करते थे कि एक बार श्री प्रभु जी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। उस समय सत्संग में आने वाले सभी लोगों की ध्यानस्थितियाँ अच्छी थीं। ध्यान में बैठे एक महात्मा जी श्री प्रभु जी का शिष्य नहीं थे ने ध्यान में देखा कि सभी देवी देवता हैं प्रभु जी की पूजा व आरती कर रहे हैं। फूल बरसा रहे हैं उन महात्मा जी ने सोचा कि इन योगिराज जी की माया है कि दिखा दिया कि सभी देवी देवता उनकी पूजा कर रहे हैं जब ये सवाल श्री प्रभु जी के सामने रखा गया तो श्री प्रभु जी ने कहा कि (देवी देवता शरीर की ओर इशारा कर बताया कि) इसकी पूजा नहीं कर रहे थे। अर्थात श्री प्रभु जी के शरीर की पूजा नहीं कर रहे थे वरन उसकी (ऊपर की ओर इशारा करके बताया) पूजा कर रहे थे। अर्थात् ऊपर विराजित ईश्वर या सद्गुरु सत्ता श्री प्रभु जी के रूप में मौजूद है।

हमारे श्री सद्गुरु देव भगवान एक अन्य प्रसंग बताया करते थे। एक बार हमारे श्री सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के गुरुभाई श्री नरसिंह मूर्ति जी की शिष्या रानी पदपावनि जी ने कामकोटी पीठ के शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखर सरस्वती जी के पास गई और श्री महाप्रभु जी का चित्र उन्हें दिखाया और उनसे कहा कि ''ये हमारे दादा गुरुदेव का चित्र है ये कैसे हैं'' श्री शंकराचार्य जी हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी का चित्र देखते ही ध्यानस्थ हो गए। काफी देर बाद आँखें खोलने के बाद उन्होंने कहा ''नारायण स्वयं नारायण स्वयं नारायण स्वयं'' रानी ने पुन: शंकराचार्य से पूछा कि चित्र एवं इनकी शक्ति के बारे में बताइये। तो श्री शंकराचार्य जी ने कहा कि इस चित्र में हज़ारों व्यक्तियों को एक साथ मुक्ति देने की शक्ति है। और जिनका ये चित्र है उनकी शक्ति की कोई सीमा नहीं है जो वाणी द्वारा वर्णन से परे है। इस प्रसंग से भी स्पष्ट होता है कि श्री महाप्रभु जी सद्गुरु सत्ता या ईश्वरीय सत्ता का अवतार थे।

श्री गुरुदेव भगवान बताया करते थे कि श्री महाप्रभु जी एक साथ सोलह शरीर बनाकर हम अवनि मंडल पर आये और एक शरीर नेपाल से हिमालय में समाधिस्थ रहे और अब भी हैं।

एक बार कुम्भ मेले का प्रसंग है, जब श्री प्रभु जी कुम्भ मेले में विराजमान थे और अन्य सत्संगी भी मौजूद थे। श्री प्रभु जी के शिष्य श्री मुलखराज जी महाराज ने श्री प्रभु जी से पूछा कि हम ये कैसे जानें कि इस कुम्भ के मेले में कौन कितनी शक्ति वाला महात्मा है। श्री प्रभुजी ने जवाब दिया कि तुम लोगों के लिए कोई कठिन बात नहीं है। ध्यान में बैठ जाओ और महात्माओं के मुख–मंडल के चारों ओर जो प्रकाश फैला रहता है उससे उसकी शक्ति का

पता चल सकता है। श्री मुलखराज जी ध्यान में बैठ गए उन्होंने ध्यान में देखा किसी महात्मा की शक्ति या प्रकाश उसके डेरे तक है, किसी का प्रकाश पूर्ण कुम्भ तक है, किसी का सहारनपुर तक है, कोई एक दो महात्मा ऐसे दिखे जिनका प्रकाश पूर्ण भारत में फैला हुआ था। श्री मुलखराज जी ने विचार किया कि अपने गुरुदेव अर्थात् श्री महाप्रभु जी का प्रकाश तो देखें कि इनका प्रकाश कहाँ तक है। और ये कितनी शक्ति वाले हैं। श्री मुलखराज जी महाराज जी ने ध्यान में प्रभु जी का प्रकाश देखना प्रारम्भ किया तो देखा कि श्री महाप्रभु जी का प्रकाश अखण्डमण्डलाकार होकर हज़ारों सूर्य के समान सारे ब्रह्माण्ड में फैला हुआ है। जब वो पूरा प्रकाश नहीं देख पाये तो उन्होंने प्रभु जी के प्रकाश की एक किरण को पकड़ लिया और देखते चले गए पर उनकी प्रकाश की किरण का कोई छोर नहीं था। फिर श्री प्रभु जी ने श्री मुलखराज जी को चपत लगाई और ध्यान से उठा कर कहा कि मेरे से ही तरकीब सीखी और मेरी परीक्षा लेना प्रारम्भ कर दी। श्री प्रभु जी ने कहा कि यह सद्गुरु सत्ता का रूप है जिसे सभी भजते हैं। यह भी श्री प्रभु जी की शक्ति का एक प्रसंग है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रभु जी इस अवनि पर अवतार ले कर आये थे वह अवतार सद्गुरु सत्ता या ईश्वर सत्ता का है। श्री महाप्रभु ने अपने बाल्यकाल से ही ऐसी लीलायें करना प्रारम्भ कर दिया था जो केवल ईश्वरीय सत्ता द्वारा ही की जा सकती थी।

सिद्धयोग के सुधी पाठकों व गुरुभाइयों को श्री प्रभुजी की सत्ता का ज्ञान हो सके उसके लिए श्री प्रभु जी के लीला चरित्रों का वर्णन करना उचित होगा जो क्रमशः आगे के अंकों में लिखने का प्रयास किया जायेगा। सादर जय गुरुदेव

क्रमशः

■■■

शोक संवेदना

बड़े दुःख का विषय है कि लाड़वा (धनौरा) कुरुक्षेत्र निवासी महात्मा रत्तीराम का 14 मार्च को देहावसान हो गया है। वे 70-71 वर्ष के थे। श्री सिद्ध गुफा सवांई आश्रम में श्री गुरुदेव के समय में कई वर्षों तक सेवा की। गुरुदेव के लाड़ले बच्चे थे। दिवंगत आत्मा को प्रभु जी सद्गति दें तथा दुःखी परिवारिजनों को दुःख सहन करने की ताकत दें। सिद्धयोग परिवार इस दुःख के समय में हार्दिक शोक संवेदना प्रेषित करता है।

व्यवस्थापक

श्री सिद्धयोग मासिक

श्री सिद्ध गुफा सवांई, आगरा

योग – निद्रा

योगी आदित्यनाथ, संसद सदस्य लोकसभा, महन्त गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर

योग–साधना में उच्चतर सोपान की क्रियाओं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि के लिए भूमिका तैयार करने में योग–निद्रा एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। चूँकि **''योग–निद्रा''** में साधक की चित्त की वृत्तियाँ कुछ क्षण के लिए अन्तर्मुखी होती हैं इसलिए इसे प्रत्याहार की ही एक महत्त्वपूर्ण क्रिया कह सकते हैं।

योग–निद्रा एक प्रकार से आध्यात्मिक निद्रा है जो शरीर को न केवल बाह्य रूप से अपितु आन्तरिक रूप से भी, आराम पहुँचाती है इससे शरीर प्रसन्न एवं प्रफुल्लित बना रहता है। योग निद्रा की स्थिति में साधक न पूर्ण जाग्रत स्थिति में रहता है और न ही पूर्ण सुषुप्ति की अवस्था में। इसके अभ्यास से बाह्य जगत् से सम्बन्ध विच्छेद होकर आन्तरिक अनुभूति होकर अन्त: जगत् से अवचेतन तथा अचेतन सम्बन्ध जुड़ने लगता है जो शरीर एवं मन को तनाव रहित बनाता है। यह क्रिया शारीरिक तनाव को तो दूर करती ही है साथ ही मानसिक, प्राणिक, भावनात्मक तनावों को भी दूर करने में सहयोगी है। थकावट, निष्क्रियता आदि में इस क्रिया का अभ्यास शरीर में नई स्फूर्ति एवं ताजगी का संचार करता है। नींद ठीक से आयेगी। शरीर में अनावश्यक भारीपन एवं क्लान्तता नहीं रहेगी। यह शरीर की पाचन क्रिया को तो सामान्य बनाने में सहायक है ही प्राण एवं रक्त–संचार को भी व्यवस्थित, सहज एवं समरूपता प्रदान कर हृदय रोग, रक्तचाप आदि में लाभ पहुँचाती है। सामान्य रूप से योगनिद्रा का अभ्यास निम्न लिखित विधि से किया जा सकता है–

विधि– सर्वप्रथम शवासन की स्थिति में लेटकर दोनों पैरों के बीच लगभग एक फिट की दूरी रखकर दोनों हाथों को कमर के बगल में रखकर हथेलियों को ऊपर की ओर खुला रखें। आँखें बन्द करके श्वास सहज एवं सामान्य रखें। श्वांस होने पर मनस्वत: सहज एवं सामान्य स्थिति में हो जायेगा अब मन से शरीर के विभिन्न अंगों की क्रमिक रूप से स्पष्ट एवं जीवन्त कल्पना करें। शरीर के प्रत्येक अंग को, रंग, रूप, बनावट आदि को पूरी सजगता, स्पष्टता और जीवन्तता के साथ सतत् रूप से, साक्षी भाव से देखें परन्तु यह प्रयास करें कि मन सुषुप्ति की स्थिति में न जाय। योग–निद्रा का इसी प्रकार अभ्यास किसी प्रिय वस्तु, देव–प्रतिमा अथवा किसी प्राकृतिक दृश्य आदि पर भी किया जा सकता है। शरीर पर योग–निद्रा का अभ्यास करने के लिए शरीर के प्रत्येक अंग के रूप, रंग, बनावट पर क्रमश: अन्तश्चक्षु से कल्पना करते हुए इसे देखें। सर्वप्रथम दायें पैर को लें, पूरे पैर की मन से कल्पना करते हुए उसकी बनावट आदि की कल्पना करें। अब पैर के एक–एक भाग की कल्पना करें। दायें पैर का अँगूठा, अँगूठे के बगल की अँगुली, दूसरी अँगुली, तीसरी अँगुली, चौथी अँगुली, पंजा, टखना, घुटना, जाँघ, दाँया पैर, पूरा दाँया पैर जमीन से स्पर्श कर रहा है इसी प्रकार बायें पैर का अँगूठा, अँगूठे के बगल की अँगुली, दूसरी अँगुली, तीसरी अँगली,

चौथी अँगुली, बाँयें पैर का पंजा, टखना, घुटना, जाँघ, बाँये पैर का टखना आदि बाँया पैर जमीन से स्पर्श कर रहा है बाँया पैर की जमीन से स्पर्श रेखा, कमर, पेट, छाती, पीठ, गर्दन, दाँया कान, बाँया कान, दायी आँख की ऊपरी पलक, निचली पलक दोनों पलकों की स्पर्श रेखा बाँयी आँख की ऊपरी पलक, निचली पलक दोनों पलकों की स्पर्श–रेखा, दायी नाक, बाँयी नाक, दाँया बाँया गाल, बाँया गाल, ऊपर का ओष्ठ, नीचे का ओष्ठ दोनों ओष्ठों की स्पर्श–रेखा, ठुड्डी, अपना पूरा चेहरा, दाँया हाथ का अँगूठा, तर्जनी अँगुली, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा हथेली, कोहनी, कंधा, दाँया हाथ जमीन पर स्पर्श कर रहा है दाँया हाथ तथा जमीन की स्पर्श रेखा। दाँया हाथ, बाँया हाथ का अँगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा, हथेली, कलाई कोहनी, कंधा, पूरा बाँया हाथ तथा जमीन की स्पर्श रेखा पूरा शरीर जो शव के समान पड़ा है उसकी सतत् कल्पना, श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक सहज स्थिति का मनन।

पूरी क्रिया समाप्त होने पर आँखें धीरे–धीरे खोलें। पूरी क्रिया में जो आन्तरिक शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हुई उसकी अनुभूति करें। इस का अभ्यास समयानुसार किया जा सकता है।

इस प्रकार योग–निद्रा का अभ्यास शवासन में लेटकर किसी देव–प्रतिमा अथवा प्राकृतिक दृश्य पर भी किया जा सकता है।

■■■

शोक संवेदना

बड़े दुःख की बात है कि योग साधन आश्रम ऋषिकेश के आचार्य श्री पूर्णचन्द जी महाराज 25 फरवरी को बैकुण्ठ वासी हो गये हैं। ये बहुत पुराने गुरु भाई थे। सन् 1975 में गुरुदेव से दीक्षा ग्रहण की थी। तभी से निरन्तर हनुमान की भाँति सदा ही गुरुदेव के कार्यों में संलग्न रहते रहे। सन् 1990 में गुरुदेव के लीलावसान के पश्चात् आश्रम की कमेटी ने उन्हें योग साधन का कार्य भार सोंपा जिसे इन्होंने बखूबी निभाया। पिछले कुछ वर्षों से रुग्ण से रहने लगे थे। इस समय वे 79–80 वर्ष के थे। श्री प्रभुजी उन्हे अपने चरणों में स्थान दें। शोक संतप्त उनकी धर्मपत्नी पुष्पा देवी व पुत्रगण संजय एवं गोपाल को इस दुःख की बेला में सिद्धयोग परिवार–आश्रम परिवार अपना हार्दिक शोक संवेदना प्रेषित करता है।

योगी का दरबार

प्रेषक – जगदीश राय बंसल " अधम "

योगी का है दरबार–गुरू जी योग सिखाइएँगें
गुरू सुनते हैं पुकार–हम दुनियाँ को दिखाएँगें।।

तेरी करते घर–घर पूजा–और आरती गाते हैं
अहो भाग्य हमारे–कि हम तेरे दर पर आते हैं
झुक गए बड़े–बड़े सरदार–चरणों शिश झुकाएँगें
योगी का है दरबार–गुरू जी योग सिखाएँगें ।1।

मैं कहता हूँ ढोल बजा के–ये गुरू ने ज्ञान दिया
अपने गले लगा के –हमें हंसना सिखा दिया
सिद्ध ाफा का झन्डा प्यारे–जग में लहराएँगें
योगी का है दरबार–गुरू जी योग सिखाएँगें ।2।

तेरी दया की दृष्टि दाता–हमरी तकदीर बदलती है
ये मन्द–मन्द मुस्कां प्यारी–हमरे मन को हरती है
रूप अपना हमको पल–पल दिखलाएँगें।
योगी का है दरबार–गुरू जी योग सिखाएँगें ।3।

ये पाँच तत्त्व का नव द्वारा–तेरे दर का भिखारी है
मैं योगी बन कर मानूंगा–मेरा गुरू योगावतारी है
सिद्ध योगी के चरणों ''अधम'' अभिषेक कराएँगें
योगी का है दरबार–गुरू जी योग सिखाएँगें ।4।

■■■

भजन (मतकर अभिमान काया जानी है)

प्रेषक – कुमारी हेमलता, टमकौली (पोथा), अलीगढ़

टेक- क्यों करता अभिमान, काया जानी है,
तू कर प्रभु का ध्यान माया जानी है।
गीता पढ़-पढ़ ज्ञान बढ़ाया,
तू जग में विद्वान कहाया।
मिटा न तेरा अज्ञान काया जानी है।
टेक- क्यों .... जानी है।
बाहुबल का मद जब छाया,
यौवन विषयों में ही गवाँया।
चले गये बलवान, काया जानी है,
टेक- क्यों करता .... जानी है।
प्रभु रामलाल का ध्यान लगाया,
''दिव्य'' रूप को शीश झुकाया।
तू कर गुरु का सम्मान, काया जानी है।
टेक- क्यों करता .... जानी है।
ऊँचे घर ने तू भरमाया,
माया का तुझको गरूर छाया।
ना करे सद्गुरु का अपमान, काया जानी है।
टेक- क्यों करता अभिमान, काया जानी है।

जाने सो कहि सकै नहिं, कहै सो जानें नांहि

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, लखनऊ

इस लेखनी का सौभाग्य है कि यह उन श्री चरण कमलों के विषय में कुछ लिखने जा रही है जिनकी स्तुति अवर्णनीय है, जो " .... रामकृपा बिनु सुलभ न सोई" से ही प्राप्त होती है। अतः उन्हीं की धवल कीर्ति उन्हीं के चरणों में समर्पित है।

भारत भूमि का यह परम सौभाग्य रहा है कि धर्म (संस्कृत साहित्य में धर्म का अर्थ सदैव गुण और स्वभाव से लिया जाता रहा है) का जब जब पराभव होता है और अधर्म (मनुष्य के लिए अ–करणीय) का विस्तार होता है तब तब प्रभु अवतार लेते हैं और धर्म (करणीय कृत्य) की स्थापना कर तिरोहित हो जाते हैं।

पराधीनता के लम्बे समय तक रहने और हिन्दू सनातन संस्कृति पर आघात होते रहने तथा पुस्तकालयों के जलाये जाने से प्रामाणिक प्राच्य विद्या का लोप हो चुका था। जहाँ एक ओर राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष चल रहा था, जहाँ सामाजिक सुधारों के लिए राजा राममोहनराय आदि जाग्रति पैदा कर रहे थे, जहाँ शिक्षा प्रसार के लिए दयानन्द सरस्वती आर्य संस्कृति का प्रसार कर रहे थे, वहीं योग का क्षेत्र जागरण की शीतल–मंद–सुगंध पवन से अछूता था और योग–विद्या भी अछूती थी।

आज योगविद्या के प्रचार प्रसार में जहाँ इलैक्ट्रानिक मीडिया ने क्रान्ति ला दी है और बाबा रामदेव इस क्षेत्र में क्रान्तिदूत बन गये हैं तब कल्पना करें उन दिनों की जब प्रिंट मीडिया भी एक दुष्कर कार्य था तब यात्रा की सुविधायें भी अत्यल्प थीं उन दिनों घूम–घूमकर योग की जानकारी देना और योग में वर्णित अकल्पनीय शक्तियों का साक्षात्कार करा कर जनमानस में आस्था और निष्ठा की भावना पैदा करना और ललक पैदा करना कितना दुष्कर कार्य था। आज यह लेख उन्हीं अवतारी और स्व–नाम–धन्य योगिराज रामलाल जी, जिन्हें उनके शिष्य और भक्त "श्री प्रभूजी" के नाम से जानते हैं, की कीर्ति कथा बताने का प्रयास है क्योंकि किसी महापुरुष का मूल्यांकन उन परिस्थितियों के आलोक में ही संभव है। यद्यपि मैं विनम्रता पूर्वक कहना चाहूँगा कि श्री प्रभूजी उस असीम सत्ता के अंश थे जिसे कोई मूल्यांकन की परिधि में ला ही नहीं सकता। वे "अखण्ड मंडलाकार" थे और "व्याप्तम येन चराचरम" भी।

कबीर के विषय में कहा जाता है कि मृत्यु के उपरान्त जब उनके शरीर से चादर हटाई गई तो उस स्थान पर फूलों का एक ढेर निकला। परन्तु हमारे प्रभूजी का तो देहान्त भी अनोखा था। लौकिक भाषा में देहान्त के उपरान्त उनकी समाधि भी बना दी गई। परन्तु वही प्रभूजी बारह वर्ष पश्चात् उसी देह में पाये गये, जो योग में वर्णित एक समय में अनेक शरीरों के निर्माण की बात सत्य सिद्ध करता है।

ऐसे योगिराज का जन्म अमृतसर शहर में हुआ था जो जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया वह सोना बन गया। उसके लोक और परलोक दोनों सुधर गये। मेरे पिता, (स्व.) श्री बनवारी लाल चतुर्वेदी (फीरोजाबाद) जो गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी के शिष्य थे, ने ऐसे ही गुरुदेवों के सम्बन्ध में लिखा है:

''है मिलिबौ अति कठिन तव ज्यों तारागण गगन के।

पाय मनुज तुमकों पुनः परत जाल नहिं ठगन के।।''

श्री प्रभूजी ने अत्यन्त अलभ्य क्रियाओं के अतिरिक्त जीवन तत्व साधन जैसी सरल योग क्रियायें भी आविष्कृत कीं जो सात साल से लेकर सत्तर साल तक के वृद्ध के लिए सहज करणीय थीं और हैं। उन्होंने अमर तत्व साधन और शक्तिपात दीक्षा का प्रचलन भी किया (इन पर विस्तार से मेरे पूज्य गुरुदेव –योगिराज चन्द्रमोहन जी काफी लिख चुके हैं)। ऐसे सद्गुरुओं के विषय में भी मेरे पिता श्री ने लिखा है:

''ऋषी मुनी तपसी सदा, बाट तुम्हारी जोहते।

तब गुण–सिन्धु अपार हैं, सुजन हृदय अति मोहते।।''

आज की भागम–भाग जीवन शैली में जहाँ तनाव है, ''भोगो भवति दु:ख दा'' है वहीं कथित योगगुरुओं की बाढ़ भी आ गई है। यद्यपि यह भी सच है कि ये मायावी तत्काल न सही तो कुछ समय उपरान्त जेल जीवन भी देख रहे हैं। ऐसे समय में श्री सिद्ध गुफा–सवाई धाम और श्री प्रभूजी के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा संचालित शुद्ध धाम ही आशा के केन्द्र हैं। वर्षों पूर्व मुरादाबाद के एक हनुमान भक्त ने मुझसे कहा था कि पूज्य गुरुदेव चन्द्रमोहन जी के निर्वाण के बाद मैं इस आश्रम/धाम की शरण में रहूँ। वे श्री प्रभूजी ही मेरा कल्याण करेंगे। पुनः पिता श्री की पंक्तियों का स्मरण करते हुए उन श्री प्रभूजी और गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन का स्मरण करते हुए लेखनी को विराम देता हूँ:

''बिना तुम्हारे–जीव कौ, जीवन जन्म न सार है।

जो जन तुमहि न पावहीं, वो जग में भू भार है।।''

▣▣▣

एक अद्भुत बालक का प्राकट्य

– केशव देव उपाध्याय

हमारे दादा गुरुदेव योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अनन्त सिद्धियों के भण्डार हैं। ये योगेश्वर द्वय दो अलग–अलग स्वरूपों में एक ही हैं इसमें किसी भी गुरु भाई–बहन को तनिक भी भ्रम नहीं होना चाहिए। आज भी वे उन्हीं स्वरूपों में नेपाल–हिमालय पर ज्यों के त्यों विद्यमान हैं और वहीं से समय–समय पर जन–कल्याणार्थ एक न एक अद्भुत लीलाएँ करते रहते हैं। योगी के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है और इनमें तो समस्त यौगिक शक्तियाँ समाहित हैं। किसी रोगी के असाध्य रोग को अपने ऊपर लेकर उसे पूर्ण रूपेण स्वस्थ कर देना, पुत्रहीन दम्पत्ति को पुत्र दे देना, मृत व्यक्ति को जीवित कर देना एवं नई सृष्टि की रचना कर देना तो इनके दायें–बायें हाथ का खेल है। जिस प्रकार अर्जुन भगवान श्री कृष्ण को पहचान नहीं सका, उन्हें अपना एक रिश्तेदार ही समझता रहा परन्तु जब भगवान श्रीकृष्ण ने उसे दिव्य नेत्र प्रदान किये तब वह जान सका कि ये कौन हैं। उसी प्रकार हमारे दादा गुरुदेव एवं सद्गुरुदेव की पहचान कर पाना साधारण मनुष्य के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। हाँ, यदि वे स्वयं किसी को अपनी पहचान कराना चाहें तभी उनकी एक झलक मात्र पाई जा सकती है। खेचर सिद्ध महात्मा देवरहा बाबा ने अपने मुखारविन्द से यह कहा है कि समस्त यौगिक शक्तियों को अपने में संजोये हुए जब इन्हें मैं गाँव–गाँव, नगर–नगर लोगों के बीच साधारण वेश में भ्रमण करते हुए देखता हूँ तो कभी–कभी मेरी आंखों को भी विश्वास नहीं होता तब भला हम ऐसे साधारण व्यक्तियों की क्या औकात है कि उन्हें पहचान सकें। जैसा कि हम भली–भाँति जानते हैं कि हमारे दादा गुरुदेव एवं सद्गुरुदेव असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाने में सर्व समर्थ हैं। ऐसी ही उनकी हाल में घटी एक अद्भुत लीला का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है। मैं अपने सभी गुरु भाई–बहनों से कहूँगा कि वे योगेश्वरद्वय की सर्व समर्थता को ध्यान में रखते हुए मन में तनिक भी शंका का भाव न लाकर श्रद्धा और विश्वास के साथ इस लीला का पठन–पाठन एवं चिन्तन–मनन करें।

घटना इसी पुरुषोत्तम मास के प्रारम्भ यानि अगस्त–2012 के अन्तिम सप्ताह की है। हमारे एक ध्यानी गुरुभाई ने ध्यान में देखा कि सिद्ध–शिरोमणि हमारे दादा गुरुदेव नेपाल–हिमालय पर विराजमान हैं। एक सिद्ध महात्मा उनके समक्ष उपस्थित होकर अपनी इच्छा प्रकट करता है कि महाराज, जन–कल्याणार्थ मैं पृथ्वी पर जाना चाहता हूँ क्योंकि इस समय लोग अनेकानेक कष्टों एवं भ्रांतियों से दुःखी हैं। हमारे दादा गुरुदेव ने जवाब दिया कि इस समय घोर कालिकाल चल रहा है, पृथ्वी पर जाओगे तो परेशान हो जाओगे परन्तु उस सिद्ध महात्मा ने कहा कि महाराज, लोगों का कष्ट मुझसे देखते नहीं बनता अतः आप मुझे पृथ्वी पर जाने की आज्ञा प्रदान करें लेकिन शर्त यह है कि मैं गर्भ की प्रक्रिया से नहीं गुजरना चाहता। हमारे दादा गुरुदेव कुछ गम्भीर हो गये और उस महात्मा को पृथ्वी पर भेजने की मौन स्वीकृति प्रदान कर दी।

उन्होंने उस महात्मा को बालक के रूप में जिस परिवार में भेजने का मन बनाया वह परिवार वर्ण से क्षत्रिय, पूर्ण सात्विक एवं अनन्य शिव भक्त हैं। सहारनपुर से 50–55 किलोमीटर दूर बड़गाँव कस्बे के पास नानवता ब्लाक के अन्तर्गत एक चिराऊं गाँव परिवार के मुखिया का नाम श्री कँवरपाल सिंह एवं उनकी पत्नी का नाम श्रीमती सरोज है। अगस्त दो हजार बारह के प्रथम सप्ताह में श्री प्रभु जी ने एक छः–सात वर्ष के दिव्य बालक को रात के अंधेरे में उस परिवार तक पहुँचाया दो दिन बाद श्री कँवरपाल सिंह, श्रीमती सरोज एवं उस बालक की फोटो सहित पूरा घटनाक्रम स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ।

हमारे उस ध्यानी गुरु भाई ने अखबार की कटिंग के साथ अपने ध्यानानुभव की पूरी बात मुझे बताया। मन में बड़ी उत्सुकता हुई कि इस दिव्य बालक का दर्शन अवश्य करना चाहिए। पूरे विवरण के साथ अखबार की कटिंग मेरे पास थी। अक्टूबर दो हजार बारह के प्रथम सप्ताह में पाञ्चजन्य शंख को देखने के उद्देश्य से मैं सहारनपुर आश्रम पर ही ठहरा हुआ था। दिनांक चार अक्टूबर दो हजार बारह दिन ब्रहस्पतिवार को मैं और मेरी धर्मपत्नी, वाराणसी के ही श्री युत् श्री कान्त मिश्र एवं उनकी धर्मपत्नी, मिर्जापुर के श्री मनोहर मास्टर जी, इलाहाबाद के अपने गुरुभाई श्री अन्तूराम यादव जी, सहारनपुर आश्रम के ब्रह्मचारी श्री राजनरेश शुक्ला जी तथा सहारनपुर की ही अपनी एक गुरुबहन यानि आठ लोग एक गाड़ी रिजर्व करके उस दिव्य बालक के दर्शनार्थ चिराऊँ ग्राम के लिये प्रस्थान किये। बिल्कुल देहाती इलाका, ऊभड़–खाभड़ रास्ते से गुजरते हुए पूछते, पता करते अन्ततोगत्वा हम लोग चिराऊँ गाँव श्री कवँरपाल सिंह के घर पहुँच गये। उनके भव्य मकान के बरामदे में जब हम लोग प्रवेश किये तो वहाँ पर मेज, कुर्सी एवं चारपाइयाँ इस ढंग से लगाई गयीं थीं मानो मेहमानों के स्वागत के लिये पहले से ही समुचित व्यवस्था की गई हो। मैंने पूछा कवँर पाल सिंह कौन हैं तो पता चला कि वे कहीं बाहर गये हैं और शाम तक आयेंगे। तब तक उनकी धर्मपत्नी आ गईं। उनसे पूछा गया कि वह बालक कहाँ है?तब उन्होंने बताया कि वह स्कूल गया है और दो बजे तक बस द्वारा घर आयेगा। बालक की प्रतीक्षा में हम सभी लोग डेढ़–दो घण्टे तक वहाँ रुके रहे। इस दरम्यान गाँव के काफी लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। सभी लोगों के समक्ष श्रीमती सरोज से अनुरोध किया गया कि वे इस बालक के विषय में विस्तार से बतावें। जो कुछ उन्होंने बताया वह उन्हीं के शब्दों में निम्नांकित है–

अट्ठारह वर्ष पूर्व मेरे ससुर ने गाँव के बाहर खेत में एक भव्य मंदिर बनवाया, बड़ी धूम–धाम से भगवान शंकर की शिवलिंग की स्थापना कराया और बड़े पैमाने पर भंडारा कराकर और घर–परिवार छोड़कर उन्होंने सन्यास ले लिया। इस समय वे कहाँ हैं; किसी को कुछ पता नहीं है। तब से अब तक मैं उस मन्दिर में प्रतिदिन पाँच बार पूजा करने एवं भोग लगाने जाती हूँ। एक बार मैं मन्दिर के सामने उगी हुई घास निकाल रही थी, वहीं पर मुझे एक सर्प दिखाई दिया। मुझे आवाज सुनाई दी कि इसे ले लो। आवाज तो मनुष्य की थी परन्तु मुझे कोई दिखाई नहीं दिया। वही आवाज पुनः आई। तब मैंने कहा कि मैं इसे क्यों लूँ, यह तो नाग है, मुझे डस लेगा। उसके बाद वह सर्प वहाँ से चला गया। इस घटना के ठीक छः–सात वर्ष बाद यानि अगस्त दो हजार बारह के अन्तिम सप्ताह में मन्दिर के सामने उसी स्थान पर (जहाँ पर सर्प दिखाई दिया था) एक खरगोश का बच्चा दिखाई दिया। फिर वैसे ही आवाज आयी कि इसे ले

लो। मैंने उस खरगोश को गोद में उठा लिया। मुझे उस समय महान आश्चर्य हुआ, खरगोश को गोद में लेते ही मेरे दोनों स्तनों में दूध उतर आया। मुझे छः लड़कियों के बाद एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी।

परन्तु दुर्भाग्य वश कुछ दिनों के पश्चात् उस पुत्र का देहान्त हो गया। तब से पूरा परिवार पुत्र–शोक में डूबा रहता है जब मैंने उस खरगोश को गोद लिया और मेरे स्तनों में दूध उतर आया तब मुझे ऐसा आभास हुआ जैसे मेरा पुत्र ही खरगोश के रूप में आ गया हो। बड़े प्यार से मैं उसे घर ले आयी और उसे दूध पिलाई। उस खरगोश को पाकर मैं और मेरी अविवाहित बेटी बहुत खुश हुई। परन्तु जब यह खबर मेरे पति श्री कवँरपाल सिंह को मिली तो वे बहुत नाराज हुए और कहे कि खरगोश मर जायेगा, जीव हत्या का पाप लगेगा उसे वहीं छोड़ आओ उसे जहाँ से लायी हो। पति के हठ के कारण न चाहते हुए भी दुःखी मन मैंने उसे वहीं मन्दिर के पास छोड़ दिया। खरगोश के वियोग में दो दिन तक मैं निरन्तर रोती रही और अन्न–जल तक ग्रहण नहीं किया दूसरे दिन रात में उसी बरामदे में, जहाँ हम लोग बैठे हुए थे, मैं, मेरे पति श्री कवँरपाल सिंह एवं मेरी अविवाहित बेटी अलग–अलग चारपाई पर मच्छरदानी लगाकर सोये हुए थे। रात के ठीक दो बजे मुझे आवाज सुनाई दी कि इसे अपना लो। मैं उठी और इधर–उधर देखा। गेट के पास भी देखा कोई नजर नहीं आया। फिर आकर लेट गई। थोड़ी देर बाद फिर वही आवाज आयी सरोज! इसे अपना लो। मैं उठी इधर–उधर निगाह दौड़ाई कोई नहीं दिखाई दिया। जब तीसरी बार आवाज आयी तो एकाएक मेरी निगाह मच्छरदानी के ऊपर गई मुझे मच्छरदानी के ऊपर मनुष्य आकृति की दो परछाईं दिखाई दी। चेहरा स्पष्ट नजर नहीं आ रहा था। एक परछाईं सफेद एवं एक कुछ कालिमा लिये हुए थी। जब मैंने यह सुना कि इसे अपना लो तो मैंने अपने दोनों हाथ फैलाये। महान आश्चर्य, मेरे हाथ फैलाते ही एक बालक मेरे हाथों में आ गिरा। मैं न तो घबराई और न ही भयभीत हुई। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि ईश्वर ने उसी खरगोश को मेरे पुत्र के रूप में इस बालक को भेजा है। वह बालक तुरन्त मेरे पतिदेव का चरण–स्पर्श किया और बाद में मेरा चरण–स्पर्श किया। सुबह होते ही पूरे गाँव में यह खबर करेंट की तरह फैल गई। बालक को देखने वालों की भीड़ लग गई। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उस बालक की उम्र ठीक उतनी है जितने वर्ष पूर्व वह सर्प दिखाई दिया था यानि छः–सात वर्ष। उस दिन जब बालक से पूछा गया कि बेटा तुम्हारा और तुम्हारे माता–पिता का क्या नाम है?बड़ी मुश्किल से वह अपना नाम भोला, माता का नाम माँ और पिता का नाम बाबा बताया। जब उससे पूछा गया कि तुम्हारे माता–पिता के साथ और कौन रहता है तब उसने बताया कि उनके साथ एक बूढ़ा बैल रहता है।

मैंने (श्रीमती सरोज) पूरे गाँव में पता कराया, थाने में रिपोर्ट दर्ज कराया, समाचार पत्रों में भी प्रकाशित कराया और कई शहरों में ले जाकर पूछताछ किया कि अगर किसी सज्जन का यह बालक हो तो इसे खुशी–खुशी ले सकते हैं। अनेक प्रयत्नों के बाद जब इस बालक का कोई वारिस सामने नहीं आया तब हम पति–पत्नी इसे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिए और बड़े लाड़–प्यार से इसका पालन–पोषण कर रहे हैं। इस बालक के आ जाने से मेरे परिवार में काफी पहले से चल रहा पुत्र–शोक समाप्त हो गया है और अत्यन्त खुशी की लहर पैदा हो गई

है। कुछ दिन पूर्व इसका प्रवेश भी एक अच्छे विद्यालय में करा दिया गया है जहाँ पर इसका नाम शिवा लिखाया गया है।

जब यह चर्चा चल ही रही थी कि बालक को लेकर बस आ गई। बस से उतरते ही वह बालक सबसे पहले श्रीमती सरोज का चरण–स्पर्श किया। उसके बाद हम सभी लोगों का चरण स्पर्श करने लगा। मिर्जापुर के हमारे गुरुभाई श्री मनोहर मास्टर जी ने मन ही मन यह संकल्प किया कि यदि आप सिद्ध पुरुष हैं तो कृपया मेरा चरण स्पर्श न करें। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि अन्य लोगों का चरण स्पर्श करने के बाद बालक जब श्री मनोहर मास्टर जी के पास गया तो उनका चरण स्पर्श न करके हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। अन्त में जब वह बालक इलाहाबाद के हमारे गुरुभाई अन्तूराम यादव के पास गया तो उन्होंने अपना चरण स्पर्श नहीं करने दिया बल्कि उस बालक को अपनी गोद में उठाकर उसे सीने से लगा लिया। उनका यह अनुभव है कि जैसे ही उन्होंने बालक को सीने से लगाया उनका पूरा शरीर रोमांचित हो गया और उन्हें एक विशेष दिव्य स्पर्श का अनुभव हुआ। उनके नेत्रों से अनायास ही झर–झर अश्रुधारा बहती रही। बहुत पूछने पर बालक अब अपना नाम भोला, माता का नाम सरोज और पिता का नाम श्री कँवरपाल सिंह बताता है। इसके अतिरिक्त वह बिल्कुल नहीं बोलता। वह कैसे यहाँ आया, उसे कौन यहाँ छोड़ा, इस संबंध में वह कुछ नहीं बता पाता। बालक के चेहरे पर दिव्य तेज अवश्य दिखाई देता है। बालक अत्यन्त गम्भीर है। अन्य बालकों की तरह उसमें चंचलता बिल्कुल नहीं है। श्री अन्तू राम यादव ने उस बालक के विद्यालय की कापी देखा। जब कि बालक का अभी–अभी विद्यालय में प्रवेश कराया गया है फिर भी उसकी हिन्दी एवं अंग्रेजी की अत्यन्त सुन्दर लिखावट से स्पष्ट होता है कि बालक अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न है।

यदि कोई श्रद्धालु सज्जन इस बालक से मिलना चाहें तो उपरोक्त वर्णित पते पर जाकर मिल सकते हैं अथवा दूरभाष सं० 01336–320570 पर रिंग करके बालक के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। श्री प्रभु जी के बारे में निम्नांकित दो पंक्तियों के साथ लेख को विराम दिया जा रहा है–

''बिनु नौका ही तैरा दे, मेरा माँझी है अनोखा।

ना छोड़ो इसका दामन, अब पा के ऐसा मौका।।''

सादर जय गुरुदेव

■■■

हम योग भ्रष्ट, अधम पापी।
श्री प्रभु जी चक्र – कुचक्र काटते हैं।

– श्री राजीव कुमार, अम्बिकानगर – अम्ब ,ऊना

महाप्रभु अखण्ड मंडलाकार स्वरूप योग–योगेश्वर श्री दादा गुरु महाप्रभु रामलाल जी के श्री चरणों में बारम्बार साष्टांग दंडवत प्रणाम करता हुआ श्री सिद्ध योग के शुद्धि पाठकों एवं अपने समस्त गुरु भाई–बहनों की श्री प्रभुजी की अलौकिकता का प्रसंग श्री सिद्ध योग के माध्यम से प्रेषित करने की धृष्टता कर रहा हूँ। मुझ अधम पर श्री प्रभुजी का शुभ आशीर्वाद निरन्तर बरसता आया है। सन 1981 में चंडीगढ़ में योग योगेश्वर 1008 श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने प० रामचन्द्र कालिया जी के योग शिविर में मुझको योग–शिक्षा–दीक्षा देकर मेरे जन्मजन्मांतर के कुचक्रों को कटवाया है।

प्रार्थी वर्तमान में बतौर कार्यालय अधीक्षक रा.व.मा. विद्यालय लोहारा त. अम्ब उपमंडल जिला ऊना में सेवारत है। दिनांक–29 फरवरी सोमवार सुबह 8:45 बजे जिला भाषा संस्कृति विभाग द्वारा आयोजित कवि–सम्मेलन व कार्यालय कार्य सम्पादन हेतु अम्ब बस स्टैण्ड पर इंतजार कर रहा था कि लांग रूट की बस आये व अपने गंतव्य स्थान पर जाऊं। श्री प्रभुजी किसी क्लिष्ट कर्म चक्र से निजात दिलवाना चाहते थे।

श्री प्रभुजी युग चक्र, जग चक्र, काल चक्र को घुमाने वाले महायोगेश्वर है। हमारे चर्म–चक्षु उनकी लीलाओं को नहीं समझते हैं। वह तो निरन्तर हम टूटे–फूटे बर्तनों को जो योग–विमुख होते रहते हैं पुनः प्रभुजी अपनाते हैं।

अम्ब के एक दन्त चिकित्सक दम्पति हैं जोकि कभी–कभार, (ज्योतिष शास्त्र में अगाध श्रद्धा होने से) सम्पर्क सूत्र रखते हैं किन्तु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तो हम सभी गुरु भाई–बहनों के कई जन्मों का लेखा–जोखा रखने वाले महाप्रकांड योग–ब्रह्मनायक हैं। पिछली रात दंत चिकित्सक की धर्मपत्नी का फोन आया था कि किसी ग्रह निवारण हेतु श्री गौरी–गंगा महादेव निकट लोहारा मंदिर जाना है। मैं अगली सुबह उसी दिन 29 फरवरी को बस–स्टैण्ड से सीधा उनके घर पहुंचा। वह दम्पति कार पर जाने को तैयार बैठे थे। मैं भी उनके साथ कार में बैठ गया। चिकित्सक का पति कार चला रहा था मैं उनके सामने वाली सीट पर बैठा था जबकि उनकी धर्मपत्नी पिछली सीट पर। कार अम्ब कालेज से सलोई 5 किलोमीटर क्रॉस कर श्री गौरी गंगा निकट लोहारा की ओर जा रही थी। अचानक सलोई–स्कूल के आगे अंधे मोड़ पर सामने से एच.आर. टी.सी. की बस एकदम तीव्र गति से आई कार की आमने–सामने की टक्कर होता देख मैंने महाप्रभुजी का जयकारा लगा आँखें बंद कर लीं जैसे बिल्ली को काल समझ कबूतर आँखें बन्द कर लेता है। श्री प्रभुजी अपने पथ–भ्रष्ट योग साधक बच्चों की पल–पल रक्षा करते हैं। चिकित्सक दंपति शायद काल–ग्रास बन जाते? मेरे हाथ खिड़की की हत्थी आई। जब आँखें खोलीं तो कार जैसे किसी ने उठाकर पहाड़ी वाली तरफ एक पीपल के पास सरका दी थी। चिकित्सक के सिर पर चोट लगी थी खून बह रहा था।

तथा महिला चिकित्सक बेहोश हो गई थी। लोगों का तांता लग गया। मुझे सभी पहचानते थे। उसी बस में मेरे स्कूल के दो कर्मचारी भुवनेश और ओंकार मेरे पास उतर कर आये लेकिन मेरे को खरोंच तक नहीं आई थी। कुछ महिलाओं ने उस महिला चिकित्सक को काफी–दूध पिलाकर सहलाया वह भी होश में आ गई। कार का मामूली सा नुकसान हुआ टायर फट गया था। मुझे धर्मपत्नी संतोष का फोन आया। कहां पर हो? मैंने जवाब दिया। श्री प्रभुजी ने बहुत बड़े कार एक्सीडेण्ट से बचा लिया है। यह घटना सारे स्कूल में आग की तरह फैल गई। मुझे फोन आने लगे। क्या हुआ? लेकिन मैं श्री प्रभुजी के चरणों में बार–बार प्रणाम करता हुआ बिल्कुल ठीक–ठाक था।

■■■

"तुम घबराकर जब उस जाल से निकलना चाहते हो, माया को छोड़ना चाहते हो, तब अनायास ही तुम्हें मायापति भगवान् का स्मरण होता है। तुम उन्हें पुकारते हो, व्याकुल होकर उनकी टेर लगाते हो तो वे तत्काल आकर जाल काट डालते हैं और तब तुम माया को छोड़-उनकी माया उन्हें सौंपकर, परम शुद्ध आनन्दमय हो जाते हो; पर इसकी साधना शुरू करनी होती है स्वार्थ-त्याग से।"

गोरखवाणी

अरधंत कवल उरधंत मध्ये प्राण पुरिस का वासा
द्वादस हंसा उलटि चलैगा, तबही ज्योति–प्रकाशा।

मूलाधार में स्थित कमल (चक्र) में सुप्त कुण्डलिनी महाशक्ति का जागरण करते हुए द्वादश प्रणवात्मक जप, प्राणाभ्यास के द्वारा ऊपर के अन्य चक्रों का भेदन करते हुए जब सहस्रार (ब्रह्मरन्ध्र या शून्य पद) में प्राण पुरुष जीवात्मा निवास कर परमशिव का सायुज्य अथवा अलख निरंजन ब्रह्म का सहज साक्षात्कार करता है, तब परमात्म ज्योति सम्पूर्ण कलाओं से प्रकाशित हो जाती है और जीवात्मा अपने अभिन्न कैवल्य स्वरूप में संस्थित हो जाता है, प्राणवायु जो, बाहर उत्क्रमित होती है, कुम्भक की विधि से भीतर कर उसकी गति ऊर्ध्वमुखी करने से आत्महंस जो कुण्डलिनी से समाश्रित रहता है, ऊर्ध्वमुखी हो उठता है, हंस प्राण के आधार भूत होता है और वह प्राण द्वादस अंगुल के परिमाण का होता है। अजपा (गायत्री) जप द्वारा (प्रणवात्मक हंस को ऊर्ध्वमुखी करते हुये) जब जीवात्मा ऊर्ध्व कमलों का भेदन करते हुए कुण्डलिनी के जागरण द्वारा शून्यपद–ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है तो वहाँ उसे परम ज्योति का सहज दर्शन होने लगता है।

आसण बैसिवा पवन निरोधिवा, यान मान–सब धंधा।

बदंत गोरखनाथ आत्मा विचारत, ज्यूं जल दीसै चंदा।।

(गोरखनाथ का कथन है) योगाभ्यास की सिद्धि का परमफल है आत्मचिंतन और आभ्यन्तर साधना। जब तक आत्मा का विचार नहीं किया जाता, आत्मतत्व के परिशीलन में दृष्टि नहीं रहती, तब तक आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार आदि वहिरंग साधनों का कोई महत्व नहीं है, वे तो योग की सिद्धि की दिशा में बाह्य उपकरण (धंधा) है। आत्म तत्व का विचार करने से यह पता चल जाता है कि सारा जगत ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। जिस प्रकार जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब वास्तविक चन्द्रमा नहीं है। प्रतिबिम्ब मात्र है उसी तरह जगत परमात्मा का प्रतिबिम्ब मात्र है। जगत ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म से प्रतिबिम्बित दृश्य मात्र है।

गोरख बोले सुणि रेअवधू पंचौं पसर निवारी

आपणी आत्मा आप विचारी, तब सौवो पान पसारी।।

गोरखनाथ जी कहते हैं–

हे अवधूत योगी! इस नश्वर शरीर में विद्यमान पंच ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषय शब्द, स्पर्शादि से प्रत्याहारित कर आत्मा के चिंतन में ही लगाना चाहिए। इससे साधक को भौतिक भ्रान्तियों से छुटकारा मिल जाता है और वह अन्तर्मुखी होकर आत्मचिन्तन में लग जायेगा। इसके फलस्वरूप वह अलख निरंजन परब्रह्म का साक्षात् कर कैवल्य पद प्राप्त करेगा और निर्भय होकर परम तत्व में रमण करेगा।

अहार न्यंद्रा वैरी काल,

कैसे कर रखिवा गुरु का भंडार अहार तोड़ो,
निद्रा मोड़ी,
सिव सकती है करि जोड़ी।

तब जानिवा अनाहद का बंध, ना पड़े त्रिभुवन नहीं पड़े कंध।।

रकत की रेत अंग थैं न छूटे, जोगी कहता हीरा- न फूटे।

योगी को अल्पाहारी होना चाहिए। अधिक भोजन कर लेने से नींद आती है। समय काल बन जाता है। समय बीत जाता है और योग साधना नहीं हो पाती है। जिस तरह सोने वाले की सम्पत्ति चोरों के द्वारा हर ली जाती है, ठीक उसी तरह भौतिक विषय और निद्रा में आसक्त होने से आत्म ज्ञान की रक्षा करना कठिन हो जाता है। इसका तो एकमात्र उपाय यह है कि योगी कम से कम आहार ग्रहण करें और समय का आत्म चिंतन में उपयोग करते हुए, योगाभ्यास में तत्पर रहकर कुण्डलिनी महाशक्ति को जगाकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित परम शिव से संयुक्त कर अलख निरंजन का साक्षात्कार करें। अल्पाहार से इन्द्रियों में स्फूर्ति बनी रहेगी, नाड़ियों के मल का प्राण निरोध या प्राणायाम से शोधन होगा। नाड़ियों में सम्यक् प्राण संचार और चक्रों के भेदन से अनाहत नाद श्रवण होगा। परमात्मा की ज्योति प्रकाशित होगी। यह उसी अवस्था में सिद्ध समझना चाहिए जब योगी का शरीर पात न हो। वह पक्व देह या सिद्ध देह की प्राप्ति कर ले और सब सिद्धियाँ प्राप्त कर ले।

■■■

परमधर्म 'योग' के आठ अंग

— श्री दिनेश चन्द शर्मा, आगरा

भगवान पतंजलि देव ने ''योगश्चित्त वृत्ति निरोध:'' कह करके योग की परिभाषा बताई है। योग निवृत्ति प्रधान धर्म है। ऋषिवर याज्ञवल्क्य ने आत्म दर्शन के साधन 'योग' को परमधर्म कहा है ''अयमेव परमोधर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्''। योग के द्वारा ब्रह्मत्व दर्शन प्राप्त करना ही मानव जीवन का सर्वोत्तम कर्तव्य है। द्रष्टा का अपने स्वरूप में अवस्थान योग कहलाता है।

योगी का स्थान सबसे उत्तम है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:

कर्मिश्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन:

योगियों का दर्जा तपस्वियों, ज्ञानियों आदि से सब प्रकार उत्कृष्ट है। इसलिए हे अर्जुन तुम योगी बनो। गीता में योग पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

योग विद्या की तो इतनी महत्ता है कि इसमें मन्द से मन्द साधक अपने अधिकार के अनुसार साधन करने से अपने चरम लक्ष्य को पा लेता है। यहां अधिकार का अर्थ है– कार्य करने की सामर्थ्य।

जैसे कक्षा एक का विद्यार्थी एम.ए. आदि कोर्स का अधिकारी नहीं। यदि इस छात्र के सामने एम.ए. की पुस्तकें लाकर रख दी जायें तो उन पुस्तकों से इस छात्र का किसी प्रकार हित नहीं हो सकता। अपनी योग्यता के अनुसार पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने से ही लाभ होगा।

योग विद्या के संदर्भ में भी शिव–संहिता में मृदु, मध्य, अधिमात्र और अधिमात्रतम् इस प्रकार चार प्रकार के योग साधकों का वर्णन है। अत: योग साधन के साधकों को अपने अधिकार (सामर्थ्य) के अनुसार गुरु उपदेश के अनुसार, गुरुदेव की शरण में जाकर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

लगातार प्रयत्न करते हुए साधक पापरहित होकर अभ्यास से परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। सिद्धि चाहने वाले कवि को चाहिए कि वह तत्परता के साथ तपश्चर्या करता हुआ संयतेन्द्रिय होकर अपनी साधना को निरन्तर करता रहे। जो तपस्वी नहीं हैं, उनको योग सिद्ध नहीं हुआ करता है। शास्त्रों का सिद्धान्त है–नातपस्विनो योग: सिद्धयति। अत: श्रद्धापूर्वक निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। गीता में कहा है कि **'श्रद्धावाल्लमते ज्ञानम् तत्पर: संयतेन्द्रिय:।'** मनुष्य के विकास में श्रद्धा पहला साधन है और दूसरा साधन है–निरन्तर अभ्यास करते रहना और तीसरा संयतेन्द्रियता। आचार्यों ने ब्रह्मचर्य, तप और श्रद्धा को योग विद्या का हेतु बताया है। यम नियम साधन मार्ग पर चलने के लिए अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य पाथेय हैं।

ऋषियों ने योग के आठ अंग बताये हैं। इनमें से पहले पांच–यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन कहलाते हैं और धारण, ध्यान और समाधि ये तीन साधन अंतरंग साधन माने जाते हैं। यम–नियम ऐसे अंग हैं जो प्राणिमात्र के लिए आवश्यक हैं। साधारण आचार व्यवहार में भी उनकी उपयोगिता है।

पहला अंग यम है। यम के पाँच विभाग हैं–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। अन्तर्मुखता के साधनों में यही प्रथम हैं। इनके बिना साधक की नींव मजबूत नहीं होती है। इनकी साधना को यमों की साधना कहा जाता है। यम–नियमों की साधनाओं का आधार भूत अहिंसा है। पूर्ण अहिंसाव्रती वही कहलाता है जो काम, क्रोध लोभ मोह के वशीभूत होकर किसी भी प्रकार की हिंसा न करें ' न कराये और न अनुमोदन करें। अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुँच जाने वाले 'साधक' के प्रति मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र बैर छोड़ देते हैं। यही कारण है कि अहिंसा के प्रतीक हमारे ऋषि–मुनियों के आश्रमों में शेर, चीता हिरन आदि पशु समान भाव से रहा करते थे।

हिंसा के निरोध के लिए अहिंसा की आवश्यकता होती है। काम और लोभ की पूर्ति न होने पर मनुष्य के मन में क्रोध उत्पन्न होता है। इच्छापूर्ति में बाधा डालने वालों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। द्वेष और क्रोध भड़कने पर हिंसा और विद्रोह पर उतर आता है। यह क्रोध आग है और हिंसा उसकी ज्वाला। हिंसा की प्रवृत्ति को रोकने के लिए अहिंसा की प्रवृत्ति को धारण करना होगा।

शास्त्रों में सत्य की अपार महिमा बताते हुए कहा गया है कि कल्याण चाहने वाले को सत्य परायण होना चाहिए। तैत० उपनिषद में कहा है–**''सत्यं ज्ञानमन्नतं ब्रह्म।''** सत्य प्रभु का रूप है और वाणी का तप है। जो लोग मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का पालन करते हैं, बहुत कम समय में ही उनकी वाणी में शक्ति आ जाती है और क्रियाफल होने लगता है। योग दर्शन में भगवान पतंजलिदेव ने साधना पाद में सूत्र में कहा है–**''सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम''**। सत्यनिष्ठ योगी को वाक्‌सिद्धि रहती है। उसके मुख से निकला वचन कभी मिथ्या नहीं होता।

तीसरा 'यम' है–'अस्तेय'। यह भी अहिंसा भाव की परिपुष्टि के लिए है। दूसरे के धन को छल से चोरी , से या किसी अन्य प्रकार से अपहरण न करना अस्तेय कहलाता है। स्तेय या लोभ एक दुर्गुण है। लोभ दो प्रकार से होता है। जिस वस्तु पर अपना अधिकार नहीं, उसको किसी प्रकार प्राप्त करना इसका नाम 'स्तेय' है। इसका दूसरा रूप है जो वस्तुएं अपने पास हैं या जिन पर अपना अधिकार है उन्हें अधिक से अधिक संग्रह करके अपने पास रखना। इसका नाम परिग्रह है। इसके समाधान के लिए अस्तेय और अपरिग्रह की वृत्तियों को अपनाना आवश्यक है। अर्थात् पहले अन्याय पूर्वक उपार्जन का परित्याग और फिर आवश्यकता से अधिक संग्रह का परित्याग। अस्तेय की पूर्ण प्रतिष्ठा होने पर योगी को सब प्रकार के ऐश्वर्य स्वतः प्राप्त होने लगते हैं, किन्तु उसको कामना नहीं रहती है–

''अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम्।

योग सूत्र 2/37

यमों में ब्रह्मचर्य की महिमा शास्त्रों में विस्तार से बताई गयी है। काम का निवर्तक ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म के लिए चर्या ही काम की इच्छा को मिटा सकती है। ब्रह्मचारी को सिद्धों की तरह शक्तिपात की योग्यता आ जाती है। भगवान पतंजलिदेव ने– " **ब्रह्मचर्य प्रतिष्टायां वीर्य लाभः''** इस सूत्र में ब्रह्मचर्य धारण का फल बताया है। ब्रह्मचर्य धारण करने से बल प्राप्ति के साथ–साथ साधक में अनुपम गुण बढ़ जाते हैं और पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाने पर अपने शिष्यों में शक्ति संचार करके ज्ञान धारण करा सकता है। योग मार्ग पर चलने वालों के लिए ब्रह्मचर्य व्रत आवश्यक है। ब्रह्मचर्य का अर्थ जहां वीर्य का संग्रह और उसका पतन न करना है साथ ही ब्रह्मनिष्ठ होना है। योगियों का कहना है कि ब्रह्मचारी अपने प्राणों पर पूरा नियन्त्रण करने में तभी समर्थ हो सकता है जब वह पूर्णतया ब्रह्मनिष्ठ हो। यदि ब्रह्मनिष्ठा का जीवन में अभाव रहेगा तो वीर्य का वेग योग साधक को कामुकता अथवा सांसारिक विषय वासना की ओर बहा ले जायेगा। अतः ब्रह्मचारी के लिए वीर्य रक्षा के साथ–साथ ब्रह्मनिष्ठ होना भी अनिवार्य कर्तव्य माना गया है।

योग का दूसरा अंग है ''नियम''। पतंजलिदेव ने नियमों का वर्णन करते हुए बताया है कि–**''शौच, सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः''** अर्थात शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान ये पांच नियम बताये हैं। शौच के बारे में शास्त्रों में विस्तार से चर्चा की गई है। शौच बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार का बताया है। मिट्टी, जल आदि से बाह्य शरीर की शुद्धि की जा सकती है और शरीर के भीतरी अवयवों की शुद्धि के लिए षटकर्मों को आवश्यक बताया गया है। नेति, धौति, वस्ति, न्यौली, कपालभाती और त्राटक शरीर की भीतरी शुद्धि के लिए आवश्यक बताये गये हैं। योगी प्राणायाम आदि क्रियाओं को करने से पहले षटकर्मों के द्वारा शरीर की आभ्यन्तर शुद्धि करके प्राणायाम करने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। अंतरंग और बहिरंग के मल को प्रक्षालित करने की प्रक्रिया है–''शौच'। जैसे–जैसे आभ्यन्तर का शौच बढ़ता है वैसे–वैसे अन्तःकरण की शुद्धि, मन की पवित्रता, इन्द्रियों पर जय और आत्म दर्शन की योग्यता बढ़ती जाती है।

नियमों में दूसरा है–'सन्तोष'। सन्तोष का अर्थ है मन की पूर्णतुष्टि। जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान की कहावत है। जिसको इस लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक के समस्त भोग विचलित नहीं करते वही पूर्ण सन्तुष्ट कहला सकता है।

योग मार्ग में तप बड़ा आवश्यक है। बिना तप के शरीर स्वस्थ नहीं होता और अन्तःकरण निर्मल नहीं होता। तप के बिना योग सिद्ध नहीं होता। अनादि काल से कर्म–क्लेश, वासना आदि के द्वारा उत्पन्न हुआ विषय जाल अन्तःकरण की शुद्धि के बिना नहीं कटता। योग सम्बन्धी नियमों में तप की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि जिसके जीवन में तप नहीं वह किसी मंत्र की रक्षा या ज्ञान के धारण में समर्थ नहीं हो सकता है। शास्त्र विधि के अनुसार तप परम उपादेय है। गीता के सत्रहवे अध्याय में सात्विक, राजस और तामस तप के स्वरूपों की व्याख्या की गई है। तप के बिना स्वाध्याय भी निरर्थक है।

चौथा नियम स्वाध्याय है। स्वाध्याय से ईश्वर प्राणिधान कार्य भी सरल हो जाता है। प्रभु के प्रणव आदि पवित्र नामों का जप करना, मोक्ष शास्त्र–गीता, उपनिषद् आदि का पाठ करना

स्वाध्याय कहलाता है। पाँचवा नियम ईश्वर प्राणिधान है। परम गुरु–ईश्वर में समस्त शुभाशुभ कर्मों का अर्पण करना अथवा कर्मफल का त्याग करना ईश्वर प्राणिधान बताया गया है।

क्रियायोग का प्रारम्भ आसन से होता है। आसन की सिद्धि से प्राणायाम में सफलता मिलती है और प्राणायाम से प्रत्याहार की सिद्धि होती है। प्रत्याहार के द्वारा चित्त को अन्तर्मुख किया जाता है। धारणा में चित्त को किसी एक विषय पर लगाया जाता है और ध्यान में केवल वृत्ति पर। समाधि में ध्याता, ध्येय और ध्यान का भेद ही समाप्त हो जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने साधन पाद में यम नियम आदि बहिरंग साधनों का वर्णन किया है साथ ही आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार का स्वरूप बताया है। इन साधनों से इन्द्रियों की बहिर्मुखता समाप्त हो जाती है। योग में आसनों का भी विस्तृत विवेचन है। योगासन करने से मन की एकाग्रता बढ़ती है। नाड़ी शुद्धि के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। योगासनों में इस प्रकार के भी आसन हैं जिनका अनवरत अभ्यास करने से महाशक्ति कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है और मनुष्य सामर्थ्य को पा जाता है। योगाचार्यों ने आर्ष ग्रन्थों में बहुत से आसन, बन्ध एवं मुद्राओं का उल्लेख किया है, जो सभी शरीर को आरोग्य रखने के उत्कृष्ट साधन हैं। यहां यह भी उल्लेख करना लोकहितकारी होगा कि योग योगेश्वर प्रभुजी रामलाल जी महाराज ने ''जीवन तत्व साधन'' के रूप में अद्‌भुत आविष्कार दिये हैं। जीवन तत्व साधन में सभी आसनों का समुच्चय हो जाता है। परमपूज्य गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने देश–व्यापी योग प्रचार कार्यक्रमों में जीवन तत्व साधनों को कराकर यह सिद्ध करा दिया है कि जीवन तत्व साधन की क्रियाएं परम उपयोगी हैं और बीमारियों में अमृत के समान परम लाभदायक हैं।

आसन शरीर शुद्धि और रोग निवारण के साधन हैं। आजकल तो आसन और प्राणायाम की शिक्षा के अनेक केन्द्र खुल गये हैं। परन्तु यम और नियम की साधना के बिना आसन सिद्धि सम्भव नहीं है। आसन और प्राणायाम किसी योगी से ही सीखने चाहिए। योग का प्रयोजन स्वरूप स्थिति अर्थात् कैवल्य, अपवर्ग, मोक्ष, निःश्रेयस आदि हैं। इस विद्या का ज्ञान गुरु से ही प्राप्त करना चाहिए। योग विद्या के गुह्य ज्ञान की प्राप्ति में सद्‌गुरु का अन्वेषण और उसकी शरणागति आवश्यक है। जन्म जन्मांतर के संस्कारों से सद्‌गुरु की प्राप्ति होती है। विद्यागुरु और दीक्षा गुरु तो बहुत मिल सकते हैं, परन्तु सद्‌गुरु पुण्य कर्मों से ही मिल पाते हैं।

विवेक चूड़ामणि में सद्‌गुरु के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं कि ''गुरु श्रोत्रिय, निष्पाप, कामना रहित, ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। जो ईंधन रहित अग्नि के समान शान्त हो, अकारण दया सिन्धु हो तथा शरणागत बन्धु हो।

सद्‌गुरु शिष्य को जिस मंत्र की दीक्षा होती है, उस मंत्र का जप योग विद्या की उपलब्धि तथा परम लक्ष्य की प्राप्ति में परम सहायक होता है। सद्‌गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्यों को निर्देश है कि प्रतिदिन प्रातः 5 से 7 बजे के मध्य अपने गुरुमंत्र का जाप और ध्यान करना चाहिए। साधकों को नियमित रूप से जीवन तत्व साधन और योगासनों के साथ योग के सभी अंगों को पुष्ट बनाने के लिए निरन्तर अभ्यास करना हितकारी है।

वेद मानव की प्रार्थना

अवा नो अग्ने ऊतिभिर्गायत्रस्य

प्रभर्मणि विश्वासु धीषु वन्द्य।

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्

विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्।

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं

विश्वायुपोषसम्।

मार्डीकं धेहि जीवसे।।

हे वन्दनीय परमेश्वर! आप, प्राणों के प्राण, शरीर के रक्षण, पालन, भरण–पोषण के अनेक साधनों से हमारी रक्षा कीजिए।

हे परमेश्वर! हमें समस्त विपत्तियों को नष्ट करने वाले सर्वश्रेष्ठ बल–शक्ति की प्राप्ति कराइये, जिसका मनुष्यों और संग्राम में शत्रुओं के लिए पार पाना दुर्गम हो, हमें अपार बल प्रदान कीजिए और अक्षय धन से सम्पन्न कीजिए।

हे परमेश्वर! आप हमें अपने जीवन निर्वाह तथा सभी मनुष्यों के पालन–पोषण के लिए यथेष्ट सुख, आरोग्य प्रदान करने वाला उत्तम ज्ञान तथा प्रचुर मात्रा में अन्न से युक्त कीजिए।

(सामवेद उत्तरार्चिक 14/4/14)

अमृत कण

यत्र धर्मो द्युतिः कान्ति-
र्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः
यतो धर्मस्ततः कृष्णो
यतः कृष्ण स्ततो जयः

(महाभा-भीष्मपर्व 23/28)

जहाँ न्यायोचित बर्ताव, तेज़ और कान्ति है, जहाँ ह्री (लोक लाज) श्री और बुद्धि है तथा जहाँ धर्म विद्यमान है, वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्री कृष्ण हैं वहीं विजय है।

◆ ◆ ◆

महता पुण्यपण्येन क्रीतोऽयं कायनौस्त्वया
पारं दुखोदधेर्गन्तुं तर यावन्न भिद्यते।
अति पुण्य पण्य से पाई तुमने यह काया नौका
दुःख सागर से तरने को, तर, मत चूको यह मौका।

◆ ◆ ◆

वेद शास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।
गुरु भक्ति सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः
गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्या इत्य ब्रवीच्छ्रुतिः

वेद शास्त्र विहित उपासना आदि को छोड़कर मनुष्य को गुरु भक्ति करनी चाहिए। गुरु ही साक्षात् हरि का रूप है, ऐसा देव पुराण बतलाते हैं।

◆ ◆ ◆

योगध्यान की महिमा

योगध्यान से मिले शान्ति, योगध्यान से मिलते राम।
योगध्यान से मन प्रफुलित, योगध्यान से बनते काम।
योगध्यान से तन मन निर्मल, योगध्यान से मिले विश्राम।
योगध्यान है मुक्ति दाता, पाप होते भस्म तमाम।
पुण्य बुद्धि ध्यान से होती, जीव पाता पूर्ण विश्राम।
योगध्यान यदि पाना चाहो, सिद्ध गुफा को करो प्रणाम।
योगध्यान की विधि समझाऊँ, भैया समझलो करके कान।
दो घन्टे का मन्त्र जाप कर, एक घन्टे का करले ध्यान।
गुरु उपदेश मन्त्र को जपले, गुरु देव का करले ध्यान।
पांच बजे से सात बजे तक, है उन का उपदेश महान।
दीर्घकाल निरन्तर करले, श्रद्धा से करले जी जान।
श्रद्धा बिन जो यत्न करेगा, निश्चय पतन उसका जान।
समर्पित हो जो गुरु चरणों में, जैसे हो गये हैं हनुमान।
मन वांछित फल पायेगा वह, गुरु आज्ञा पालक इन्सान।
बृजमोहन तुम ध्यान धरो नित्य, पा जाओगे पद निर्वाण।

■■■

! हे सिद्ध पीठ तुमको प्रणाम !

प्रस्तुति – श्री त्रिलोक सिंह विष्ट

हे सिद्ध पीठ तुमको प्रणाम
तू ज्ञान ज्योति से आलोकित,
तू भक्ति रसामृत से प्लवित,
तू कर्म योग स्वर से मुखरित,

तू महायोग पथ से भासित।
तुझमें मज्जन करके साधक
पाता सत्वर कैवल्य लाभ।
हे सिद्धपीठ तुमको प्रणाम
हे विश्व तीर्थ शत्-शत् प्रणाम।

तुममें विकसित ऋषि परम्परा,
सद् गुरूओं का आशीष भरा।
चिरमुक्त सिद्ध योगी जन से
आलोकित है यह पुण्य धरा।

तेरे पवित्र रजकणा छूकर
हो जाऊँ मैं गत शोक-काम।
हे सिद्ध पीठ तुमको प्रणाम,
हे विश्व तीर्थ शत्-शत् प्रणाम।

■■■

स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर

जय नारायण राय

श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को स्वधर्म के आधार पर युद्ध करने का आदेश देते हैं। अर्जुन के लिए युद्ध ही स्वभाव प्राप्त या सहज कर्म है, वही उसका स्वधर्म है। यदि कोई व्यक्ति शिक्षक है, तो उसका स्वभाव प्राप्त कर्म है अध्ययन–अध्यापन। व्यापारी का सहज कर्म है व्यापार। श्रमिक का सहज कर्म है शारीरिक श्रम। हर प्रकार का कर्म करने वाला व्यक्ति लोक संग्रह हेतु कर्म कर सकता है। अपने–अपने सहज कर्म से न डिगते हुए मनुष्य उसे लोक संग्रहार्थ कैसे बनाए, इसका उपाय नीचे श्लोक से स्पष्ट है :

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

अर्थात् सभी कर्मों को मुझमें समर्पित करते हुए, चित्त को आत्मा में केन्द्रित कर आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित हो युद्ध कर।

उपरोक्त श्लोक में पाँच लक्षण बताये गये हैं, जिनसे युक्त होने पर कर्म लोक संग्रहार्थ बन जाता है।

1. सब कर्मों का सन्यास परमात्मा में करना– कर्त्ता अपने सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा को इस भाव से समर्पित करे कि इससे प्राप्त होने वाला फल मन ही मन प्रभु को अर्पित है।

2. चित्त को आत्मा में केन्द्रित करना– यदि साधक की आसक्ति देह में बनी रहती है तो यह आसक्ति बन्धनकारी है। साधक का सम्पूर्ण कर्म बिना आसक्ति प्रभु को समर्पित होना चाहिए।

3. आशा रहित– हमारा चित्त आशा के कारण मन से चिपकता है। भविष्य का अधिक विचार ईश्वर के प्रति हमारे समर्पण को शिथिल करता है। निराशा (हताशा) और आशा में अन्तर है। निराशा में देह और मन दोनों अवसन्न हो जाते हैं, दोनों की क्रियाशीलता बाधित हो जाती है, जबकि आशा में मन क्रियाशील रहता है पर देह अवसन्न रहती है। अतः निराशा और आशा का शिकार न होने से बचना है।

4. ममता रहित– यह भाव चित्त को देह से चिपकने से बचायेगा। सारे ममत्व की जड़ है देह। इसलिए श्री कृष्ण भगवान ममतारहित होने का उपदेश देते हैं।

5. सन्ताप रहित– 'क्षोभ' और 'आवेश, ज्वर के दो लक्षण हैं और दोनों ही साधक के कर्म को निस्तेज बना देते हैं। दोनों ही बुद्धि की चंचलता सूचित करते हैं। ज्वर की ऐसी स्थिति में बुद्धि उचित अनुचित का विचार नहीं कर पाती। यदि साधक आवेश और क्षोभ से

रहित हों, भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान के कर्म में भगवत्समर्पित भाव से अपने चित्त को निविष्ट करे, तो वह साधक देह और मन की आसक्ति से ऊपर उठ आत्मतत्व में लीन होगा और तब साधक सही अर्थों में अपने सम्पूर्ण कर्मों को फल सहित संन्यास परमात्मा में करने में समर्थ होगा।

श्री कृष्ण भगवान ने गीता के तीसरे अध्याय के श्लोक 31 से 34 में उपरोक्त श्लोक के निहित अर्थ के सन्दर्भ में अर्जुन को परमात्मा में श्रद्धा और अनसूया (दोषदृष्टि न रखना) वृत्ति रखने का उपदेश देते हैं तथा यह बतलाते हैं कि जो साधक परमात्मा के कथन में दोष निकालते हैं, वे सभी ज्ञानों में भ्रान्त है, अविवेकी है और फलस्वरूप वे विनाश को प्राप्त होते हैं। अर्जुन श्री कृष्ण भगवान को एक परम आत्मीय और अत्यन्त स्नेही सखा के रूप में मानता है किंतु अर्जुन के भीतर एक ऐसी वृत्ति काम कर रही है, जो श्री कृष्ण भवगान के वचनों के प्रति पूरी तरह से आस्था नहीं जमने देती। अर्जुन के मनोवृत्ति को अन्तर्या श्री कृष्ण भगवान भांप कर कहते हैं कि ज्ञानी पुरुष भी अपने निज स्वभाव के अनुरूप चेष्टा करता है। कोई अपने को बलपूर्वक किसी काम के करने से रोकना चाहे तो नहीं कर पाता, क्योंकि स्वभाव आड़े आता है। श्री कृष्ण भगवान ने निग्रह की प्रयोजनीयता बतायी। जो साधक दृढ़प्रतिज्ञ है और स्वभाव के बली होने पर भी उस पर हावी होने का संकल्प करते हैं, उनके लिए संकल्प फलप्रसू होता है बशर्ते राग और द्वेष पर विजय पा ले।

■■■

असतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः।।

(वन. 1/29)

दुष्ट मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से तथा एक आसन पर बैठने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य किसी कार्य में सफल नहीं हो पाते।

भक्ति

स्वामी विवेकानन्द

संसार में जितने धर्म हैं उनकी उपासना प्रणाली में विभिन्नता होते हुए भी वे वस्तुतः एक ही हैं। किसी–किसी स्थान पर लोग मन्दिरों का निर्माण कर उन्हीं में उपासना करते हैं, कुछ लोग अग्नि की उपासना करते हैं; किसी–किसी स्थान में लोग मूर्ति–पूजा करते हैं तथा कितने ही आदमी ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते। ये सब ठीक है, इन सबमें प्रबल विभिन्नता विद्यमान है, किंतु यदि प्रत्येक धर्म के सार, उनके मूल तथ्य, उनके वास्तविक सत्य के ऊपर विचार कर देखें, तो वे सर्वथा अभिन्न हैं। इस प्रकार के भी धर्म हैं जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नहीं स्वीकार करते। यही क्या, वे ईश्वर का अस्तित्व भी नहीं मानते। किंतु तुम देखोगे, ये सभी धर्मावलम्बी साधु–महात्माओं की ईश्वर की भाँति उपासना करते हैं। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का आदेश है। सभी जगह इस भक्ति–रूप उपासना का सर्वोपरि प्रभाव देखा जाता है। ज्ञान–लाभ की अपेक्षा भक्ति–लाभ करना सहज है। ज्ञान–लाभ करने में कठिन अभ्यास और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। शरीर सर्वथा स्वस्थ एवं रोगशून्य न होने से तथा मन सर्वथा विषयों से अनासक्त न होने से योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता, किंतु सभी अवस्थाओं के लोग बड़ी सरलता से भक्ति साधना कर सकते हैं। भक्तिमार्ग के आचार्य शांडिल्य ऋषि ने कहा है कि ईश्वर के प्रति अतिशय अनुराग को भक्ति कहते हैं। प्रहलाद ने भी यही बात कही है। यदि किसी व्यक्ति को एक दिन भोजन न मिले तो उसे महाकष्ट होगा। सन्तान की मृत्यु होने पर उसको कैसी यन्त्रणा होती है! जो भगवान के प्रकृत भक्त हैं, उनके भी प्राण भगवान के विरह में इसी प्रकार छटपटाते हैं। भक्ति में यह बड़ा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति होने से केवल उसीके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिः– 'हे भगवन् तुम्हारे असंख्य नाम हैं और तुम्हारे प्रत्येक नाम में तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।' और प्रत्येक नाम में गम्भीर अर्थ गर्भित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नहीं। हमें सदा मन में ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नहीं करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधकों के द्वारा विभिन्नि नामों में उपासित होते हैं, किंतु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव में कोई भेद नहीं है। कुछ लनोग सोचते हैं कि हमारी ही साधना–प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधनाप्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम उपाय बताते हैं। किंतु यदि दोनों की ही मूल भित्ति का अनुसन्धान किया जाये तो पता चलेगा कि दोनों ही एक है। शैव शिव को ही सर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली समझते हैं। वैष्णव विष्णु को ही सर्वशक्तिमान मानते हैं, देवी के उपासकों के लिए देवी ही जगत में सबसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किसी बात का विश्वास ही नहीं करता, किंतु यदि मनुष्य को

स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष-बुद्धि छोड़नी ही होगी। द्वेष भक्ति-पथ में बड़ा बाधक है-जो मनुष्य उसे छोड़ सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट-निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हुनमान ने कहा है:

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः।।

-मैं जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति हैं, वे ही जानकीपति हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं।' प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरों से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त संसार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावों में विभिन्नता है। ईश्वर करे, संसार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो संसार का सामंजस्य नष्ट होकर विश्रृंखलता आ जायेगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल जायें तो उसको उसी के भावानुरूप मार्ग पर अग्रसर करने में सहायक हो, तो वह मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होगा। उसको उन्हीं भावों के विकास की साधना करनी होगी। जो व्यक्ति जिस पथ पर चलने की इच्छा करे, उसे उसी पथ पर चलने देना चाहिए; किंतु यदि हम उसे दूसरे मार्ग पर घसीटने का यत्न करेंगे तो वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी खो बैठेगा; वह किसी काम का न रह जायेगा। जिस भाँति एक मनुष्य का चेहरा दूसरे के चेहरे से भिन्न होता है, उसी प्रकार एक मनुष्य की प्रकृति दूसरे की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी मनुष्य को अपनी प्रकृति के ही अनुसार चलने देने में क्या आपत्ति है? एक नदी एक ओर बहती है-यदि उसके बहाव को ठीक कर नदी को उसी ओर बहाया जाय तो उसकी धारा अधिक तेज हो जायेगी और वेग बढ़ जायगा। किंतु यदि स्वाभाविक प्रवाह की दिशा को बदल कर उसे दूसरी दिशा में प्रवाहित करने का यत्न किया जाय तो तुम यह परिणाम देखोगे कि उसका परिमाण क्षीण हो जायगा और उसका वेग भी कम हो जायेगा। यह जीवन एक बड़े महत्व की चीज है; अतः इसे अपने-अपने भाव के अनुसार ही चलाना चाहिए। भारत में विभिन्न धर्मों में कभी विरोध नहीं था, वरन् प्रत्येक धर्म स्वाधीन भाव से अपना कार्य करता रहा, इसीलिए यहाँ अभी तक प्रकृत धर्मभाव बना है। इस स्थान पर यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि विभिन्न धर्मों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह विश्वास कर लेता है कि सत्य का मूल मंत्र ही मेरे पास है और जो मनुष्य मुझ जैसा विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है; और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि अमुक व्यक्ति ढोंगी है, क्योंकि अगर वह ऐसा न होता, तो मेरा अनुगमन करता।

यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धर्म का अवलम्बन करें तो इतने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति क्यों होती? सब लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रकार के उद्योग और चेष्टाएं हुई, किंतु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। तलवार के जोर से जिस स्थान पर लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने की चेष्टा की गयी, वहाँ भ एक की जगह दस धर्मों की उत्पत्ति हो गयी-इतिहास इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक धर्म नहीं हो सकता। क्रिया तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों से मनुष्य मननशील हुआ है। यदि इन शक्तियों का प्रयोग

मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न सकता; इतना ही क्यों, वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य मननशील प्राणी है, वह मनयुक्त है। 'मन्' धातु से मनुष्य शब्द बनता है, मनुष्य शब्द का अर्थ है मननशील। मननशीलता की शक्ति के लोप हो जाने पर मनुष्य और एक साधारण पशु में कोई अन्तर न रह जायेगा। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृदय में घृणा का उद्रेक होगा। ईश्वर करे, भारतवर्ष में कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अतः मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयों में एक अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उनमें छोटे–बड़े का अन्तर है। परंतु यदि सब जीवन के अपने–अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करतें, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहेगी। सभी धर्मो में अच्छे–अच्छे लोग हैं, इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है– जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगों का अमंगल ही होगा। नैतिकता के ऊपर ही सब धर्मो की भित्ति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओं के प्रयोग से शरीर–शुद्धि हो सकती है, आभ्यान्तर शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एवं अन्य गर्हित कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल मद्यपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशंसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य–पालन के साथ–साथ दूसरों का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियों का लोप हो गया है। लोगों में एक यही धारणा विद्यमान है कि 'इसके साथ मत खाओ, उसके साथ मत खाओ।' सैकड़ों वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी जो सुन्दर नियम थे, उनमें आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र में भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे हैं– 1. जाति दोष– जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध हैं, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह जाति–दुष्ट खाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजों को अधिक मात्रा में खाता है, उसमें काम–वासना बढ़ती है और वह अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में सब प्रकार से घृणित है। 2. गन्दे तथा कीड़े–मकोड़ों से दूषित आहार को निमित्तदोष से युक्त कहते हैं। इस दोष से छुटकारा पाने के लिए ऐसे स्थान में भोजन करना होगा, जो खूब साफ–सुथरा हो। 3. आश्रय दोष– दुष्ट व्यक्ति से छुआ हुआ खाद्य पदार्थ भी त्याज्य है। कारण, इस प्रकार का अन्न खाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं। ब्राह्मण की संतान होने पर भी यदि वह व्यक्ति लम्पट एवं कुकर्मी हो, तो उसके

हाथ का खाना उचित नहीं।

इस समय इन सब बातों के प्रकृत उद्देश्य पर किसी का ध्यान नहीं है। इस समय तो सिर्फ इसी बात का हठ मौजूद है कि ऊँची से ऊँची जाति का न होने से उसके हाथ का छुआ न खायेंगे, चाहे वह व्यक्ति कितना ही अधिक ज्ञानी या पवित्र आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की किस भाँति उपेक्षा होती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण किसी हलवाई की दूकान पर जाकर देखने से मिल जाएगा। दिखायी पड़ेगा कि मक्खियाँ सब ओर भनभनाती हुई सब चीजों पर बैठती हैं, रास्ते की मिट्टी उड़कर मिठाई के ऊपर पड़ती है और हलवाई के कपड़े पर्याप्त साफ-सुथरे नहीं हैं। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दूकान में शीशा बिना लगाये हम लोग मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मक्खियाँ खाद्य पदार्थ पर न बैठ सकेंगी एवं अपने साथ हैजा तथा अन्यान्य संक्रामक बीमारियों के कीटाणु न ला सकेंगी। भोजन के नियमों में हमें सुधार करना चाहिए, किंतु हम उन्नति न कर अवनति के मार्ग की ही ओर क्रमशः अग्रसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जल में थूकना न चाहिए, किंतु हम नदियों में हर प्रकार का मैला फेंकते हैं! इन सब बातों की विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य शौच की विशेष आवश्यकता है। शास्त्रकार भी इस बात को भली भाँति जानते थे। किंतु इस समय इन सब पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य लुप्त हो गया है, इस समय उसका आडम्बर मात्र शेष है। चोरों, लम्पटों, मतवालों, अपराधियों को हम लोग अपने जाति-बन्धु स्वीकार कर लेंगे, किंतु यदि एक उच्च जातीय मनुष्य किसी नीच जातीय व्यक्ति के साथ, जो उसी के समान सम्माननीय है, बैठकर खाये, तो वह जाति-च्युत कर दिया जायेगा और फिर वह सदा के लिए पतित मान लिया जायेगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई है। अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के संसर्ग से पाप और साधु के संसर्ग से साधुता आती है और असत् संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य शौच है।

आभ्यन्तरिक शुद्धि कहीं अधिक दुस्तर कार्य है। आभ्यन्तरिक शुद्धि के लिए सत्य भाषण, निर्धन, विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्तियों की सेवा आदि की आवश्यकता है। किंतु क्या हम सर्वदा सत्य बोलते हैं? अकसर होता यह है कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर', 'दीनबन्धु' आदि बड़े-बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनबन्धु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई वयक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्व नहीं देते, तथापि ये भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं- उन्हें भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किसी न किसी परिमाण में

आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति–पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय दूतों की मूर्तियाँ बनी थीं, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया; किंतु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म–पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति–पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता–पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति–पूजा नहीं है, किंतु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति–पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि–पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे–अच्छे पीरों–फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय काबे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म–साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है; जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का जप किया जाता है, यह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।

किंतु इस स्थान पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति जैसी उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पथ से निवृत्त किया गया, तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति–पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उन्नति की जिस सीढ़ी तक चढ़ चुके हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी जनों को इन सब व्यक्तियों को अग्रसर होने में सहायता करने का प्रयत्न करना चाहिए; किंतु उपासना–प्रणाली को लेकर झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग धन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े भागवत समझते हैं, किंतु यह वास्तविक भक्ति नहीं है–वे लोग भी सच्चे भागवत नहीं हैं। अगर वे सुन लें कि अमुक स्थान पर एक साधु आया है और वह ताँबे का सोना बनाता है, तो वे दल के दल वहाँ एकत्र हो जायेंगे, तिस पर भी वे अपने को भागवत कहने में लज्जित नहीं होते। पुत्र–प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, धनी होने के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, स्वर्ग–लाभ के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, यहाँ तक कि नरक की यंत्रणा से छूटने के लिए की गयी ईश्वरोपासना को भी भक्ति नहीं कह सकते। भय या लोभ से कभी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही सच्चे भागवत हैं, जो कह सकते हैं–''हे जगदीश्वर! मैं धन, जन, परम सुन्दरी स्त्री अथवा पांडित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी अहेतुकी भक्ति चाहता हूँ।'' जिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब चीजों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब चीजों

को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह ब्रह्मा से लेकर कीटाणु तक सभी वस्तुओं में विष्णु के दर्शन करता है। तभी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है और केवल तभी वह अपने को हीन से हन समझकर यथार्थ भक्त की भाँति ईश्वर की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एवं तीर्थ-यात्रा आदि की प्रवृत्ति नहीं रह जाती-वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रों में भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगों में भक्ति की दृढ़ स्थापना के लिए इन सम्बन्धों की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता-पिता कहे बिना नहीं रह सकते। रासलीला में राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योंकि संसार में स्त्री-पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नहीं रह सकती- केवल एक अच्छेद्य बन्धन दोनों को तन्मय कर देता है। माता-पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा-भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं, वह हमारी रक्षा करता है या नहीं, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यों चिन्ता करें? वह हम लोगों का प्रियतम, आराध्य देवता है; अतः भय के भाव को छोड़कर हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नहीं करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुतः प्रेम करता है। सांसारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम में पागल थीं। जिन ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढ़ो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किंतु इस अपूर्व प्रेम के तत्व को कितने लोग समझते हैं? बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नहीं जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या इन तत्वों को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्वों को समझ ही नहीं सकते। जिस समय मन से सारे सांसारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा आध्यात्मिक भाव-जगत में मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओं के रहस्य को समझने में समर्थ होते हैं। किंतु इस प्रकार के मनुष्य संसार में कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की दुहाई देकर लोग अनायास ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया पृथक् है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में लिप्त नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई अथवा कोई भी दूसरा धर्मावलम्बी क्यों न हो, सभी पवित्रता के अवतारस्वरूप होते। किंतु मनुष्य अपनी-अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिचालित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किंतु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उन्मत्त हो जाते हैं, ईश्वर का गुणगान करते-करते

जिनकी आँखों से प्रेमाश्रु की प्रबल धारा बहने लगती है। इसी प्रकार के लोग सच्चे भक्त हैं।

भक्ति की प्रथम अवस्था में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता है, इत्यादि। इस प्रकार के भावों को एकदम छोड़ देना चाहिए। केवल एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण सूर्य, चन्द्र एवं अन्यान्य सभी चीजें गतिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वराभिमुख चल रही हैं। हमारे जीवन की सारी घटनाएँ, अच्छी या बुरी, हमें उसी की ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए खून किया। जो कुछ भी हो, अपने लिए हो या दूसरों के लिए हो, प्रेम ही इस कार्य का मूल है। खराब हो या अच्छा हो, प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। शेर जब भैंस को मारता है, तब वह अपनी या अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत, अनादि, अनन्त ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोग जानें या न जानें, वे उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं। पति की परमानुरागिणी स्त्री नहीं जानती कि उसके पति में भी वही महान दिव्य आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है—केवल यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उसे स्रष्टा, पालनकर्ता आदि समझते हैं, तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है, किंतु जिस समय इन सारी भावनाओं का परित्याग कर उसे प्रेम का अवतारस्वरूप समझते हैं एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हमें परा भक्ति प्राप्त होती है।

गुरु-शिष्य

भगिनी निवेदिता

हिन्दू धर्म के उपदेशों को यदि पर्याप्त विस्तार एवं स्पष्टता से व्यक्त किया जाय, तो नि:स्संदेह यह दिखाई देगा कि वे सर्वदिक चिंतन की दिशा उपलब्ध कर देते हैं। हिन्दू चिंतन, हिन्दु परिकल्पना का वास्तविक उद्दिष्ट है मनुष्य का उद्धार, उसकी मुक्ति है। इस उद्दिष्ट की प्राप्ति के लिए नित्य निरन्तर वर्धिष्णु विचारों, श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर ध्येयों को उसके समझ रखना, उनकी उपासना उससे करवाना यही मार्ग है। समग्र संसार में कहीं पर भी शिक्षा की योजना के अन्तर्गत यही एक मात्र विधिसम्मत मार्ग है। बौद्ध धर्ममत का मूल स्रोत हिन्दुधर्म ही है। यह बात सबसे अधिक स्पष्टतया बौद्ध धर्मग्रन्थ धम्मपद के प्रारंभिक शब्दों में ही निदर्शित है: 'हम जो कुछ हैं अपने चिन्तन का परिणाम हैं। हमारा समग्र अस्तित्व, हमारा जीवन हमारे विचारों पर आधारित है। हमारा गठन, हमारा चरित्र निर्माण हमारे विचारों से हुआ है।' समस्त संसार में हिन्दु विचारक, दार्शनिक ही एक–मात्र ऐसा है जो इस एकमात्र सत्य, एकमात्र तत्व पर किसी मत प्रणाली को आधारित करने की कल्पना कर सकता था।

भारतवर्ष में जो–जो विचार, कल्पनाएं धार्मिक उपदेशों, सिद्धान्तों के रूप में प्रचलित हुई हैं, उनमें सर्वाधिक चित्ताकर्षक एवं अनाकलनीय, अगम्य कल्पना है गुरुभक्ति की। किसी विचार को, किसी ज्ञान को बिना गुरु के प्राप्त नहीं किया जा सकता। ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु की शरण में अपना अहंकार छोड़कर अनन्य भाव से जाना होगा। उसकी सेवा करनी होगी। '**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिन स्तत्वदर्शिन:।।**(गीता 4,34)। गुरु से नम्रतापूर्वक प्रणाम, जिज्ञासु प्रश्न और सेवा के द्वारा ज्ञान का उपदेश प्राप्त किया जाता है। जब तक ऐसा कर प्रत्यक्ष अनुभव न लिया जाय इस विधि पर किसी का विश्वास होना कठिन है। परंतु ऐसा सोचना महान भूल होगी कि यह नियम केवल धार्मिक शिक्षा, ज्ञान, उपदेश अथवा अनुग्रह के विषय में है। यह भी सोचना भूल होगी कि हमें आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक कल्याण के विषय में तथ्य, विचार, उपदेश जो देता है उसी को गुरु कहें।

सत्य कहीं से भी प्राप्त हो उसे ग्रहण करने की हमारी वृत्ति होनी चाहिए। जिस जिससे हमें कोई भी शिक्षा प्राप्त हो उस प्रत्येक व्यक्ति के प्रति हमें आदर भाव रखना चाहिए। वय, पद, नाता आदि में हमसे जो श्रेष्ठ है उन सबके प्रति समादर रखना हमारा कर्तव्य होता है, किंतु इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है शील अथवा चरित्र और ज्ञान अथवा विद्वत्ता जिसके प्रति हमें समादर ही नहीं, वरन अनन्यशरण भाव रखना चाहिए।

अपने विद्यार्जन के काल में अनेक शिक्षकों ने हमें पढ़ाया होगा; अनेकों से अनेक विषय हमने पढ़े होंगे। परंतु उनमें एकाध ऐसा होगा जिसका आचरण, जिसका जीवन, जिसका व्यक्तित्व स्वयं एक पाठ होगा। जिसके आचरण ने हमारे जीवन को प्रभावित किया होगा, हमारे व्यक्तित्व को

आकार दिया होगा। बिना बोले, बिना कहे, उसे देखकर हमने उसका अनुकरण किया होगा। वही वास्तव में गुरु है। हमें अपने अनुभव के आधार पर जिस मार्ग पर चलना है उस मार्ग का दर्शन वह गुरु हमें कराता है। परंतु जीवन में हम जो भी ज्ञान सम्पादन करें, फिर चाहे वह नितान्त लौकिक ज्ञान क्यों न हो, हमें निरन्तर श्रद्धापूर्वक उस स्रोत का, उस गुरु का स्मरण करना चाहिए जिससे वह ज्ञान हमें मिला हो। जिस–जिस से हम मिलें, प्रत्येक से हम कुछ न कुछ सीख सकते हैं, प्रत्येक हमारे लिए ज्ञानदाता बन सकता है। जिस किसी ने कोई साक्षात्कार, कोई महान अनुभूति की हो, ऐसे व्यक्ति की खोज में हमें सदा रहना चाहिए। सुसंस्कृत समाज में विचरण करने वाले व्यक्ति के लक्षण हैं: मनोयोगी स्वभाव, ज्ञानी के प्रति समादर, लोगों के विचारों के प्रति सम्मान भाव और नवनवीन सत्य की जिज्ञासा। इसी प्रकार स्वमताग्रह हठीपन और अपने से विचारों में श्रेष्ठ लोगों की उपेक्षा एवं निरादर या अशिष्टता एवं असंस्कृत समागम के परिचायक हैं।

नवीन कल्पना, नव विचार जो पीढ़ी लेकर चलती है, उस पीढ़ी के युवकों को प्रत्येक पग पर इस प्रकार की अशिष्टता की भूल करने के प्रलोभन के अवसर आते हैं। वे अपने पितरों के नियत मार्ग को छोड़कर एक नया मार्ग ग्रहण करते हैं। परंतु उन्हें यह नहीं भूला चाहिए कि जिस एक विषय में वे पूर्व निर्धारित मार्ग से हटे हैं, उसके अतिरिक्त अन्य सभी विषयों में उनकी अपेक्षा उनके पितरों का ज्ञान अधिक है। ये नवीन विचार, नवीन कल्पनाएं भी उनके पूर्व किसी ने बताई हैं: वे उनसे ज्येष्ठ हैं, श्रेष्ठ हैं। यह नवविचार यदि अपने ज्येष्ठ, श्रेष्ठ पितरों की सामाजिक घनिष्ठता और प्राचीन संस्कृति की परख को अधिक दृढ़, अधिक पक्की न कर सके तो वह विचार भी व्यर्थ है। परंतु अपने से बड़ों के प्रति उपेक्षा के भाव और सहृदयता के अभाव के कारण युवक वर्ग सभ्य समाज में अपने प्रति घृणा निर्माण कर लेता है। यह ज्येष्ठ वर्ग उसे एक बार परख लेता है और फिर से उसे उत्तेजना नहीं देता; इसके फलस्वरूप फिर उस युवक को अपने से हीन, कनिष्ठ लोगों से समागम करना पड़ता है। वरिष्ठ लोगों के लिए यह युवक असह्य, उद्दण्ड हो जाता है। जो दूसरे किसी को मानता नहीं, जो अपने ही नेतृत्व में हार्दिक विश्वास रखता है, जो स्वयंभू नेता है ऐसा युवक वास्तव में समाज–कण्टक है।

आज के युवकों से समय की मांग है कि सच्चे शिष्य बनें, समाज के लिए हुतात्मा बनें, समाज की बलि वेदी पर रोमांचकारी आत्म–समर्पण करने वाले सेवक बनें। इन सब में उत्साह, आवेग जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यक है विनय, नम्रता। नेता बनने के लिए उद्यत और उत्सुक लोग जहां चाहो मिल सकते हैं; गली–गली में नेता घूमते रहते हैं। ऐसे छुटभय्ये 'नेताजी' की समाज में कोई कमी नहीं है। परंतु हम यह बात एक बार अच्छी प्रकार समझ लें, कोई भी व्यक्ति जन्म जात नेता नहीं होता; सच्चा नेता तो संस्कारों से बनता है। जो निष्ठावान अनुयायी हो वही यथार्थ नेता बन सकता है। आइए, आगामी पीढ़ी के लिए, आगामी काल के लिए नेतृवर्ग निर्माण करने की इस प्रक्रिया को हम प्रभावी बनायें। आज की पीढ़ी के युवा वर्ग को सेवा, गहन विचार और विनयशील बोध के संस्कार प्रदान करें।

किसी विषय–विशेष में मानव–जाति ने अब तक जो कुछ उपलब्धि प्राप्त की है, गुरु अपने

शिष्य को उससे अवगत कराते हुए उसे अद्यावत् बना देता है। जिस प्रकार अपने माता–पिता से हमें अपना भौतिक शरीर प्राप्त होता है, वैसे ही गुरु के माध्यम से हमें बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होता है। गुरु को उसके जीवन में जितना भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसे वह अपने शिष्य पर उद्घाटित कर देता है। इसलिए गुरु का सर्वप्रथम आवश्यक गुण, प्रधान योग्यता यह है कि उसमें अध्ययन की असामान्य शक्ति होनी चाहिए। अपने ज्ञान को सतत परिमार्जित करते हुए उसे अद्यावत् रखना चाहिए।

विश्वविद्यालयों का वास्तविक कार्य छात्र को प्रत्येक घटना और अवसर से शिक्षा ग्रहण करने का प्रशिक्षण देना है। किसी भी प्राप्त परिस्थिति से जो अधिक से अधिक ग्रहण करेगा वही समाज का उत्तम बौद्धिक नेतृत्व कर सकेगा। अनन्यशरणता यह शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ परिचय है, लक्षण है। अर्थात् यह अनन्यशरणता अथवा समर्पण, आत्मनिवेदन माने निष्क्रियता अथवा मूर्खता नहीं। जो गुरु को आत्म–समर्पण करता है, आत्म–निवेदन करता है वह कोई अज्ञानी, अनाड़ी, निर्बुद्ध नहीं होता। 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' कहकर भगवान श्रीकृष्ण की शरण में जाने वाला अर्जुन धनुर्धारी, महावीर, अपने समय का सर्वश्रेष्ठ नर, नरोत्तम था। और फिर भगवान श्रीकृष्ण का गीतोपदेश केवल अर्जुन ने ही नहीं सुना, वरन् भगवान के स्पर्श से और शब्द से रथ के वे उल्लसित अश्व भी रोमांचित हुए। इतना ही नहीं, गीता के गायन से जो ध्वनि–तरंग निःसृत हुए वे उस निर्जीव रथ पर भी टकराये। सुना तो तीनों ने, रथ, अश्व और अर्जुन तीनों ने सुना, किंतु क्या तीनों ने एक सा सुना? क्या तीनों की अनन्यशरणता, तीनों का आत्म–समर्पण भगवान के चरणों में एक समान था? नहीं! कतई नहीं! कोई भी दो व्यक्ति अलग–अलग ढंग से, अलग स्तर से सुनेंगे। असमय क्रियाशीलता से अधिक अपरिष्कृत आचरण कोई अन्य नहीं होगा। परंतु गुरु चरणों में हमारा निरहंकार आत्म–समर्पण, जो कि हमारा प्रगति मार्ग प्रशस्त करता है, अत्यन्त तीव्र, ~~र्णय~~ होता है, और अब तक के हमारे समस्त प्रयासों, संघर्षों का फल उसमें निहित होता है।

यह तो गुरु की सामर्थ्य और कृपा है जो हमें बल प्रदान कर साक्षात्कार, अनुभूति कराती है। हमारे प्रयास किसी भी दिशा में और कितने ही क्यों न हो, वे नितान्त नगण्य होंगे, यदि मानव के आविष्कारों के इक्के–दुक्के संकेतों के रूप में हम निर्जनता में जाकर यह प्रयास करें। आज हमें यदि कोई महत्व प्राप्त हुआ है तो वह इस कारण कि हम ऐसे स्थान पर अवस्थित हैं जो युग परम्परा से हमें प्राप्त हुआ है और जहां से भविष्यकाल का, कल का अरुणोदय होने जा रहा है यह जो हमारा स्थान बना है वह मात्र गुरु के साथ प्रस्थापित हमारे समैक्य [Solidarity] हमारी एकात्मता के कारण, अन्य किसी कारण नहीं। हमारी जानकारी जितनी बढ़ेगी, हमें यह अनुभव होगा कि मानव ज्ञान–भण्डार में हमारा अंशदान अत्यणु है। न्यूटन ने कहा था, 'मेरा वैज्ञानिक ज्ञान समुद्र तीर पर फैली हुई बालू में एक बालु–कण के समान नगण्य है।' हम जितना अधिक जानेंगे, उतना ही अधिक इतिहास हमसे डंके की चोट पर बातचीत करेगा, महापुरुषों के कार्य अधिक सार्थक होंगे, अपने मार्गदर्शक के नेता की कल्पना के अनुसार हम अधिक प्रयास करेंगे, उसकी ही ओर से मानो नया प्रयास करेंगे।

जहां तक गुरु का प्रश्न है, उसकी ओर से कोई मांग नहीं होती; वह जो ज्ञान देता है, जो विद्या प्रदान करता है वह निःशुल्क देता है, निरपेक्ष भाव से देता है। गुरु ध्येय निर्देश करता है, लक्ष्य की ओर संकेत करता है। गुरु के इस व्यवहार में और किसी मनुष्य को अपनी बात को मानने के लिए विवश करने में आकाश–पाताल का अन्तर है। गुरु कभी अपने शिष्य को परवश, पराभृत नहीं बनाता। इतना ही नहीं, प्रत्युत आदर्शों के विकास और परिपक्वता के लिये जितनी स्वतन्त्रता, जितनी छूट गुरु देता है, उतनी प्रायः कोई नहीं देगा। शिष्य की गुरुभक्ति असीम होती है, उससे जो अपेक्षा की जाय उसे पूर्ण करने में वह दो पग आगे रहेगा। शिष्य के सेवा–भाव को गुरु यथावकाश अपनी व्यक्तिगत परिचर्या से मोड़कर देश, राष्ट्र, मानवता और ईश्वर सेवा के जीवन–व्रत के रूप में परिणत करेगा। परंतु यह गुरु के लिए करणीय है, गुरु का कर्तव्य है, शिष्य को उसकी मांग नहीं करनी चाहिए, वह उसका अधिकार नहीं।

गुरु जो–जो सिद्धि प्राप्त करेगा, वह जितना ऊपर उठेगा, वह जितना महान होगा, उतना ही अधिक बल, अधिक प्रेरणा शिष्य को प्राप्त होगी। हो सकता है दोनों के सामने एक समान ध्येय, एक ही आदर्श हो। इसीलिए कहा जाता है, गुरु बिन कौन बताए बाट? आध्यात्मिक संसार में बिना किसी जड़मूल अथवा परम्परा का स्वयंभू प्रतिभा–सम्पन्न पुरुष बनने की अपेक्षा साधारण से साधारण, नगण्य व्यक्ति की शिष्य परम्परा में होना अधिक गौरव की बात है। उपर्युक्त स्वयंभू महापुरुष (!) अतिशीघ्र कालसागर में विलीन हो जायेगा ऐसे स्वयंभू पुरुष तो विलीन हो जायेंगे, मुरझा जायेंगे, और वे पुरुष जो गुरुभक्ति में, गुरु के प्रति समर्पण भाव में, गुरु शरण होने में अनन्य भाव नहीं रखेंगे, हाथ रोक कर आगे बढ़ेंगे, सीमाबद्ध रहेंगे, वे कभी जड़ न पकड़ पायेंगे। ये दोनों ही अवस्थाएं समान रूप से निन्दनीय और त्याज्य हैं।

■■■

प्रत्येक व्यक्ति पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ और आवश्यक प्राणी है, किसी को भी अपने को अनावश्यक, तुच्छ अथवा हीन नहीं समझना चाहिये। यदि वही अपना मूल्य नहीं समझेगा तो दूसरे उसे क्यों आवश्यक मानेंगे? सबसे बड़ी बात है कि मनुष्य न दीन–हीन है, न तुच्छ। उसे सदैव मनुषत्व और मनुष्य सुलभ शक्तियों में विश्वास बनाये रखना चाहिये। अन्य प्राणियों की भाँति वह न गया–गुजरा है और न ही तुच्छ !

परम पूज्य अनन्त श्री गुरुदेव के चरणों में

त्रिजुगी नरायन मिश्र

पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
लक्ष्य दिखने लगा जिन्दगी का हमें,
चल रहा हूँ निरन्तर उसी ओर को।
ईश्वरोमुखी हृदय प्रभु हमारा करो,
लय अवस्था में लाना हमें आपको,
बन्धनों में रहूँ, है असम्भव बहुत,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
सतत् खोया रहूँ ध्यान में आपके,
ज्ञान वैराग्य, की मन में ज्योति जले।
चित्त की वृत्तियाँ संतुलित हों सभी,
भाव सम का हमारे हृदय में पले।

प्रभु मिलेगें हमें असम्भव कहाँ रह गया
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये
एक तुम ही प्रभु शक्ति के द्वार हो
जिन्दगी के तुम्हीं एक आधार हो
तुम से ही है यह रोशन हुई जिन्दगी
अब अँधेरा कहाँ रह गया राह में
भ्रम जरा भी हृदय में रहा है नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।

**आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।**

(छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2)

अर्थात् जिसका आहार शुद्ध है, उसकी बुद्धि शुद्ध होती है, सात्विकी होजाती है और सात्विकी हो जाने से स्मृति दृढ़ हो जाती है और स्मृति के दृढ़ हो जाने से हृदय की सब ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और इनके खुल जाने से वह मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता हुआ भगवान् के चरणों में पहुँचकर आत्मानुभूति प्राप्त कर लेता है।

योग–आसन

विधि – इस आसन के करने के लिये पहिले सावधानी से सीधे लेट जायें, शरीर को ढीला छोड़ दें, उसके बाद अपने पैरों को धीरे–धीरे ऊपर की ओर उठायें, जब पैर लगभग एक हाथ भर ऊपर उठ जायें तब उनका अपने शरीर के बलाबल के अनुसार वहाँ ही रोक दें, कुछ देर रोके रहें, उसके बाद धीरे – धीरे नीचे को ले आयें व जमीन पर टिका दें, सारे शरीर को ढीला छोड़ दें। इसी का नाम **उत्तानपाद आसन** है। इसी प्रकार धीरे – धीरे अपने पैरों को उठाकर इधर–उधर झुला भी सकते हैं व अभ्यास बढ़ जाने पर कई बार भी धीरे–धीरे ऊपर व नीचे ला सकते हैं।

समय – बहुत धीरे – धीरे करना चाहिये।

लाभ– इस आसन का प्रभाव मल विसर्जनी नाड़ियों पर अधिक पड़ता है अतः मल शोधक है। कोष्ठबद्धता का नाशक है। स्नायु दौर्बल्य को दूर करता है।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

☐☐☐☐☐☐

रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां पद्मक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे।।

(देवीभागवत 12 / 6)

जो रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल वर्णों के श्रीमुखों से सम्पन्न हैं, तीन नेत्रों से जिनका विग्रह देदीप्यमान हो रहा है, जिन्होंने अपने रक्तवर्ण–शरीर को नूतन लाल कमलों की माला से सजा रखा है, जो अनेक मणियों से अलंकृत हैं, कमल के आसन पर विराजमान हैं, जिनके दो हाथों में कमल और कुण्डिका एवं दो हाथों में वर तथा अक्षमाला सुशोभित हैं, उन हंस की सवारी करने वाली कुमारी–अवस्था से सम्पन्न भगवती गायत्री की मैं उपासना करता हूँ।

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा